अनुक्रमणिका

1. ज्ञान, कला और शास्त्र के साधक
   प्रो. भरत गुप्त के साथ साक्षात्कार – सुश्री चेतना वशिष्ठ 8
2. भारत मन में बसता है – डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा 12
3. भरत के नाट्यशास्त्र की समकालीन प्रासंगिकता
   – प्रो. देवेन्द्र राज अंकुर 18
4. स्मृति से पाण्डुलिपि तक – डॉ. रमेश चंद्र गौड़ 28
5. भारत मानसः व्यावहारिकता का शाश्वत सूत्र– डॉ. कन्हैया झा 31
6. स्मृतियों का सफर – श्री मनोज रमेला 36
7. प्रवासी भारतीयों का भारत प्रेम – श्री धर्मवीर 43
8. भारतः अंतर्मन का परिदृश्य (भारतीय संस्कृति, कला
   और चेतना का विस्तृत विमर्श) – सुश्री मनीषा 48
9. भारतः हमारी सोच में बसा राष्ट्र – सुश्री अंजू दुबे 50

संपादन परामर्श मंडल
प्रो. भरत गुप्त
श्री चित्तरंजन त्रिपाठी

प्रधान संपादक
प्रदीप कुमार मोहन्ती

संपादक
चेतना वशिष्ठ

सह–संपादन
उपासना शर्मा

कार्यालय सहयोग
कविता मिश्रा
कमल नैन चोपड़ा

आकल्पन एवं कला पक्ष
चेतना वशिष्ठ

टाईप सैट डिज़ाईन एवं छपाई
जे.के. प्रिन्ट एण्ड पैक, दिल्ली

प्रकाशक
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय

संपादक कार्यालय
राजभाषा विभाग, बहावलपुर हाउस,
भगवानदास रोड,
नई दिल्ली–110001

ई–मेल : rajbhasha.nsd@gmail.com

अनुक्रमणिका

10. खुद से रू–ब–रू	– सुश्री स्वर्ण लता	52
11. खुशियों से भरा भारत	– सुश्री कविता मिश्रा	53
12. अलौकिक भूमिः भारत (गुरु गोरखनाथ और मकर संक्रान्ति पर्व पर आधारित)	– श्री सत्यम कुशवाहा	56
13. कुछ कैमरे से कुछ कलम से		59
14. राजभाषा गतिविधियाँ		62
15. लौह पुरुषः सरदार वल्लभ भाई पटेल पर एक विशेष नाट्य प्रस्तुति		64
15. राजभाषा का दीप– नाट्य प्रस्तुति		

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक एवं राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्वीकृति आवश्यक है। रचनाओं की रीति–नीति या विचारों से राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है और न ही वे उसके लिए ज़िम्मेदार हैं।

'राजभाषा मंजूषा' राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की राजभाषा पत्रिका है।

स्रोत एवं साभार :

newindianexpress.com, in.pinterest.com, lifeispreciousnotrance.blogspot.com, www.google.co.in, M.facebook.com, Indian_classical_culture.

शुभकामना संदेश

भारतीय संस्कृति का फलक काफी व्यापक है जो विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों के रूप में 5000 से अधिक वर्षों का एक क्रमिक और सृजनशील इतिहास समेटे हुए है। इसी भारतीय ज्ञान का सशक्त स्वर बनाती है.. राजभाषा मंजूषा।

राजभाषा मंजूषा–राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के राजभाषा विभाग द्वारा प्रकाशित अर्द्धवार्षिक पत्रिका जो अपने 30वें अंक के साथ अपनी यात्रा के अनवरत क्रम में अग्रसर है। अपनी सांस्कृतिक और रचनात्मक प्रतिबद्धता की सशक्त उपस्थिति की परम्परा में इस अंक की थीम 'भारत मन में बसता है' इस अंक को एक अभिनव आयाम प्रदान करती है। इसमें विधाओं की विविधता को स्थापित करते हुए–साक्षात्कार, विषायोंन्मुख विचार परक आलेख, कथा–साहित्य, कविता, लोक धर्मिता आदि अनेक कला पक्षों को एक मंच पर लाने का महती प्रयास है, जिसमें यह अंक बहुत हद तक सफल हुआ है।

मंजूषा का उद्देश्य एक आधिकारिक औपचारिकता–निर्वहन से आगे बढ़कर पाठक को उसकी भावभूमि में विचरण कराना है और यह दायित्व यह 30वाँ अंक निभाने का प्रयास कर रहा है। इस अंक के लिए राजभाषा विभाग को मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

भरत गुप्त
(उपाध्यक्ष, एन.एस.डी. सोसायटी)

संदेश

'राजभाषा मंजूषा' राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के राजभाषा विभाग द्वारा प्रकाशित अर्द्धवार्षिक पत्रिका है जिसका 30वाँ अंक आप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

राजभाषा मंजूषा भारतीय मानस के छुए–अनछुए पहलुओं की समृद्ध व्याख्या का एक रचनात्मक मंच भी है जो इस अंक की थीम 'भारत मन में बसता है', से परिलक्षित है। इस अंक में भारतीय शास्त्रीय नाट्य परम्परा से लेकर कथा लेखन, लोक संस्कृति और लोकाचार के विविध स्वरूपों का एक समृद्ध संसार पाठकों के समक्ष रखने का प्रयास किया गया है जो निश्चित ही भारतीय सोच और दर्शन की अप्रतिम व्यापकता और बहुपक्षता का जीवन्त उदाहरण बनता है।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के राजभाषा विभाग को इस अविस्मरणीय अंक के लिए हार्दिक बधाई और भविष्य की शुभकामनाएँ।

चि. त्रिपाठी

चित्तरंजन त्रिपाठी

(निदेशक)

अपनी बात

आपके हाथों में राजभाषा मंजूषा का 30वाँ अंक सौंपने का क्षण मेरे लिए अतीव हर्ष का पल है। 1999 में शुरू हुई मंजूषा की ये यात्रा कितने पड़ावों से गुज़रते हुए निरंतर अपनी व्यापकता को सशक्त विस्तार देती जा रही है। इस बीच यह पत्रिका भारतीय कला, साहित्य, संस्कृति से लेकर अनेक विषयों को सफलता के साथ स्थापित करने में प्रयासरत है।

प्रस्तुत अंक भी अपनी इसी अटूट परंपरा की गरिमा में और वृद्धि करते हुए भारतीय कला और मानस के विविध पक्षों पर एक समग्र दृष्टिपात है। साहित्य, रंगमंच, संस्कृति, लोक जैसे विषयों से जुड़े अपने–अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ, विद्वानों द्वारा लिखे गए आलेख भारतीयता के भाव का पक्ष पाठकों के समक्ष रखते हैं।

पाठकों के लिए इस बहुपयोगी संग्रहणीय अंक के लिए मैं राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के राजभाषा विभाग को अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

प्रदीप मोहन्ती

प्रदीप कुमार मोहन्ती
रजिस्ट्रार

संपादक की क़लम से

राजभाषा मंजूषा ने पिछले कई वर्षों में इतनी विविधता, प्रासंगिकता और समसामयिकता के साथ कला, रंगमंच, साहित्य, लोकधर्मिता, संगीत, देशज परम्परा के गौरवमयी इतिहास, भारतीय वास्तु शास्त्र, चित्रकला, खानपान– न जाने कितने ही विविध बहुरंगी फलकों की परत–दर–परत ऐसी अनूठी व्याख्या स्थापित की है जो लगभग अनन्य है।

भारतीय संघ के संविधान की आठवीं सूची में सम्मिलित सांस्कृतिक और प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए मान्यता प्राप्त 22 भाषाओं में किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा की मानता नहीं दी गई है, जबकि संविधान के अनुच्छेद 343 के अंतर्गत हिन्दी को राजभाषा का दर्जा और अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में अँग्रेजी को सह–राजभाषा या सह–आधिकारिक भाषा के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। इतनी विविधताओं से भरी भूमि की–एकता में अनेकता की विशेषता को चरितार्थ करते हुए देखें तो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी भारत की पहचान में हिन्दी एक बड़ा कारक है–बेशक देश में यह भी अन्य अनेक भाषाओं में एक हो। चाहे सिनेमा हो या रंगमंच, चाहे साहित्य हो या संस्कृति, या कुछ और–क्षेत्रीयता के भाव से ऊपर उठकर भारतीयता का पर्याय हो गई है हिन्दी... और इसके लिए जिम्मेदार है, इसका लचीलापन और किसी भी भाषा को पराएपन के झूठे आवरण से मुक्त कर उसका सस्नेह आलिंगन करना, जिसने इसे और समृद्धि तो प्रदान की ही है, इसकी गरिमा को भी गुणात्मक रूप से स्थापित किया है। और यह सच है कि आज भारत की 80% से अधिक जनसंख्या हिन्दी को समझती है और किसी न किसी रूप में उसे व्यवहार में लाती है–ऐसा है हिंदी का गौरव!

अगर इसके बहुआयामी रूप की चर्चा की जाए तो इतिहास, साहित्य, संस्कृति, कला, ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में जितना प्रचुर कोष हिन्दी में उपलब्ध है, मौलिक से लेकर अनूदित तक, उतना अन्य किसी भाषा में नहीं–और इसी विशिष्टता को और भी सशक्त और मुखर स्वर देती है राजभाषा मंजूषा। साहित्य से लेकर संस्कृति, रंगमंच, लोक परंपरा, स्थापत्य, इतिहास, संगीत, नृत्य आदि जैसे अनेक विषयों को प्राचीन और अधुनातन समसामयिकता की कसौटी पर परख, भारतीय ज्ञान और मीमांसा का सत्यपरक् गर्वीला पटल रचती हुई, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के राजभाषा विभाग की अर्धवार्षिक पत्रिका–जिसे भारत के गृह मन्त्री माननीय अमित शाह जी के हाथों विशिष्ट पुरस्कार प्राप्त होने का गौरव भी हासिल है!

और इसका श्रेय जाता है हिन्दी को, जिसने बिना किसी संकोची भाव के विश्व भर के भाषागत् और सांस्कृतिक चलनों और प्रचलनों को मुक्त हृदय से गले लगाया है। विश्व भर में भारतीय हृदय की वासी है हिन्दी, इसी के माध्यम से ही भारत हर हृदय में वास करता है जो इस अंक की मूल थीम को भी स्पष्ट करता है–'भारत मन में बसता है'।

प्रस्तुत अंक मंजूषा की परम्परा का निर्वहन करते हुए अपने आप में अनन्य, एक्सक्लूसिव है। इस अंक में भारत की अपनी विशिष्टताओं और विधाओं के अवलोकन के साथ भारतीय सीमाओं के पार भी प्रवासी भारतीयों द्वारा भारत के भाषाई और सांस्कृतिक भाव को जीवित रखते हुए ही उसके वैश्विक प्रसार की जिजीविषा भी दृष्टिगोचर होती है। विदेश में भारत के सांस्कृतिक दूत का दायित्व निभा चुके भाषा विज्ञानी और विद्वान डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा का आलेख........ विदेश में बसे उस प्रवासी समूह के अंतर्मन की मार्मिक यात्रा का जीवन्त दस्तावेज है, जो सैंकड़ों वर्षों बाद आज भी अपनी माटी की गंध को ही हृदय से समाए आज भी पूरी तरह से भारतीय है।

इसी प्रकार 'नाट्यशास्त्र' की अपनी विशिष्ट महिमा है। संस्कृत भाषा में भरत मुनि द्वारा रचित्, पंचम वेद के रूप में जाना जाने वाला नाट्यशास्त्र–नाट्य और रंगमंच की आदि संहिता है, संभवत प्राचीनतम् जिसने पूरे वैश्विक रंगमंच के अतीत और वर्तमान को, पुरातन और अधुनातन को–बहुविध रूप में प्रभावित किया है। अप्रैल 2025 में भारत की इस महान थाती को एक और महानतम् धरोहर श्रीमद्भगवद् गीता के साथ–संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन यूनेस्को (UNESCO) के मेमोरी ऑफ द वर्ल्ड के रजिस्टर में, इनकी प्राचीनतम् पाण्डुलिपियों के संरक्षण के साथ, सम्मिलित किया गया है। विद्यालय के भूतपूर्व निदेशक प्रोफेसर देवेन्द्र राज अंकुर ने अपने दायित्व का निर्वहन करते हुए नाट्यशास्त्र पर अपने आलेख में इसकी बीज व्याख्या की है जो रंगमंच के अध्येता और छात्रों के लिए एक अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रसिद्ध शिक्षाविद्, कला मर्मज्ञ और वर्तमान में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के उपाध्यक्ष प्रो. भरत गुप्त के साथ संपादक का साक्षात्कार भी नाट्यशास्त्र और रंगमंच के विविध–व्यापक पक्षों की प्रासंगिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

मंजूषा विद्यालय के राजभाषा विभाग की पत्रिका है। इसका मुख्य जोर और प्रयास इस बात को लेकर है कि विद्यालय के कर्मियों–कार्यरत और सेवानिवृत्त, सभी के विचारों को मंजूषा के माध्यम से स्वर प्रदान किया जा सके और साथ ही ऐसे विशेषज्ञों को जो पत्रिका के उद्देश्य को अपना रचनात्मक उपयोगी सहयोग दे सकें, उसके स्वागत में भी संकोच न किया जाए। परन्तु मुख्य रूप से विद्यालय के ही विविध विभागों से जुड़े कर्मियों और अधिकारियों के रचनात्मक विचारों और राजभाषा के प्रसार में उनके योगदान को विशिष्ट महत्व दिया गया है।

यह उल्लेख बार–बार आ चुका है कि यह सिर्फ रंगमंच के भाव से जुड़ी हुई ही पत्रिका नहीं है, वरन् हर विधा की कल्पनाशीलता के उड़ान–बिंदु का मंच है–यही इसकी विविधता है और इसी क्रम में विद्यालय के उप कुलपति श्री मनोज रमेला की कहानी इस बात का सुखद उदाहरण है कि सुबह से शाम तक कार्यालय में कागज़ों और फाइलों में उलझा रहने वाला हृदय भीतर से कितना कोमल और समावेशी भी हो सकता है।

इन सब के अतिरिक्त अंक में अनेक और भी विविध विषयों पर विविध रचनाकारों के आलेख भी हैं, कविता का भी समावेश है जो मन के भीतरी तलों की कोमलता को एक आह्वानात्मक स्वर देता है, साथ ही भारतीय त्योहारों, संस्कारों, रीति–रिवाज़ और अपनी मिट्टी की देशज गन्ध बिखेरते हुए बहुरंगी फूलों का एक गुलदस्ता बनाने का प्रयास किया गया है। इसमें हम कितने सफल हो पाते हैं, इसका मूल्याँकन तो पाठक–यानि आप ही करेंगे।

अंत में मैं इस अंक के लिए अपने आलेखों के माध्यम से अमूल्य सहयोग प्रदान करने वाले विशेषज्ञों का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके कारण मंजूषा का श्रृंगार सार्थक हुआ, उन सहृदय पाठकों का भी जो आतुरता के साथ हर नए अंक की प्रतीक्षा करते हैं।

चेतना वशिष्ठ
संपादक

ज्ञान, कला और शास्त्र के साधक प्रो. भरत गुप्त के साथ एक साक्षात्कार

सुश्री चेतना वशिष्ठ

सुश्री चेतना वशिष्ठः आपका जन्म कहाँ हुआ? आपका परिवेश कैसा था? और आपके बचपन में ऐसे कौन–से अनुभव थे जिन्होंने आपको कला, साहित्य और शास्त्रों की ओर आकर्षित किया?

प्रो. भरत गुप्तः जी, मेरा जन्म 1946 में हुआ था।मैं दिल्ली से लगभग 100 मील दूर, मुरादाबाद नामक शहर में पैदा हुआ। मेरा परिवार व्यवसाय से जुड़ा हुआ था। जहाँ तक कला की बात है, मेरी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई।

मेरे पिता तुलसी दास जी के बहुत बड़े प्रशंसक थे। घर में लगभग रोज रामचरितमानस का पाठ होता था। यह एक ऐसी पुस्तक है जो बचपन से ही मेरे मन में बस गई थी।मेरे चाचा शास्त्रीय संगीत का अभ्यास करते थे। इसलिए बहुत छोटी उम्र से ही मुझे उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत की शिक्षा मिलने लगी। कभी–कभी हमारे घर पर अच्छे कलाकार आते थे और प्रस्तुति देते थे।

इस प्रकार मेरा परिवेश बना। मेरे चाचा उर्दू के भी शौकीन थे, इसलिए 8–10 साल की उम्र में ही मुझे साहित्य और संगीत का बहुत उत्तम वातावरण मिला।मुझे लगता है कि मैंने फिल्मी संगीत 14–15 साल की उम्र के बाद ही सुनना शुरू किया। उससे पहले मैं केवल शास्त्रीय संगीत ही रेडियो पर सुनता था। उस संगीत का पूरा का पूरा प्रवाह मेरे मन में बस गया।

मैंने साहित्य का भी अध्ययन किया। यही मेरी संस्कृति रही है। यही मेरा संस्कार रहा है।

सुश्री चेतना वशिष्ठः सर, आपको पद्मश्री से सम्मानित किया गया है। आपको बहुत बहुत बधाई!

आपको 2025 में यह सम्मान मिला। हम इसके बारे में और जानना चाहते हैं। यह कहा जाता है कि नाट्यशास्त्र और नाट्यवेद दो अलग–अलग चीजें हैं। लोग अक्सर इनके बीच भ्रमित हो जाते हैं। क्या आप कृपया इस भ्रम को दूर कर सकते हैं?

प्रो. भरत गुप्तः जी हाँ, दोनों बिल्कुल अलग हैं। जब हम नाट्यवेद और नाट्यशास्त्र शब्दों का व्यवहार करते हैं, तो हमें लगता है कि ये एक ही हैं, लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर इनमें अंतर है। नाट्यवेद एक "वेद" है–इसे पाँचवाँ वेद कहा जाता है। चार वेदों से मिलकर यह पाँचवाँ वेद बना है।वेद केवल एक ग्रंथ या मंत्र नहीं होता–वेद उस ज्ञान का नाम है जो उसमें निहित है। इसीलिए भारत की ज्ञान परंपरा को वेदमत या वेद का प्रवाह कहा जाता है।

अब प्रश्न यह है कि इस ज्ञान को हम प्राप्त कैसे करते हैं?

हम इसे नाटक देखकर प्राप्त करते हैं। क्योंकि यह नाट्यवेद है–जब तक आप उसका प्रदर्शन नहीं देखते, तब तक वह ज्ञान आपके सामने पूरी तरह नहीं आता। इंद्र ने कहा था–मुझे ऐसा ज्ञान/विद्या/कला दीजिए जो कहने की और सुनने की हो। तब उन्हें नाट्य का ज्ञान, नाट्यवेद दिया गया।

सुश्री चेतना वशिष्ठः सर इसी से एक शब्द जुड़ा है शासनोपायम। यह क्या है?

प्रो. भरत गुप्तः जी, नाट्य तो ज्ञान है, लेकिन उसे मंच पर कैसे प्रस्तुत किया जाए? कैसे दिखाया जाए? यह जो विधि और तकनीक है, वही नाट्यशास्त्र है। शास्त्र एक अनुशासन है–यह बताता है कि नाटक कैसे करना है, कैसे प्रस्तुत करना है। यह नाट्य का ज्ञान ब्रह्मा जी ने भरत मुनि को दिया। भरत मुनि ने इस विद्या को मंच पर कराया। रंगमंच पर खेलने के पूरे तरीके बताए। वो जो तरीके है, उसमे अभिनय होगा, भाव की व्यंजना होगी। भाव–भंगिमाएं होंगी वो कैसे करें? उसमें क्या क्या न करें जिससे रंग में भंग न हो जाए, वो नाट्य शास्त्र है।

शास्त्र का अर्थ है–अनुशासन और विधि। यानी नाटक को किस प्रकार करना चाहिए, यह शास्त्र बताता है। जैसे अगर आप प्रेम पर आधारित नाटक बना रहे हैं, तो उसमें अतिरेक या विकृति नहीं होनी चाहिए। और यदि नाटक वीरता पर आधारित है, तो उसमें अनावश्यक श्रृंगार या भावुकता नहीं होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, कुछ साल पहले पृथ्वीराज पर एक फिल्म बनी थी। उसमें प्रेम के बहुत लंबे दृश्य थे, जो वीरता के विषय के अनुरूप नहीं थे। यहीं पर शास्त्र की आवश्यकता होती है–कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं, ताकि प्रभाव सही पड़े और बात सीधे लोगों तक पहुँचे।

सुश्री चेतना वशिष्ठः सर, आपने कहा था कि हमारी भारतीय वाङ्मय परंपरा श्रुति और स्मृति पर आधारित है।

यह क्या है?

प्रो. भरत गुप्तः देखिए, वाङ्मय का अर्थ है भाषा–और भाषा के माध्यम से जो भी शब्द निकलते हैं, चाहे वह गाना हो, बोलना हो, प्रेम की बात हो या दर्शन की चर्चा–वह सब इसमें आता है। मनुष्य की विशेषता यह है कि वह जो भी बोले, वह सार्थक होना चाहिए। वह दूसरों के लिए हितकारी हो, मंगलकारी, शुभ हो और हमें ज्ञान की ओर ले जाए। यहीं मनुष्य और पशु में अंतर है। इसी शब्द के माध्यम से हम ज्ञान प्राप्त करते हैं और फिर उसे दूसरों तक पहुँचाते हैं–इसी को श्रुति–स्मृति परंपरा कहा गया है।

अब श्रुति क्या है? तो वेदों को श्रुति कहा जाता है। वेद हमें इस सृष्टि का सत्य बताते हैं–यह ब्रह्मांड क्या है, कितना विशाल है, इसमें हमारी स्थिति क्या है। हम इस विशाल ब्रह्मांड में बहुत छोटे हैं।

ऐसे ही स्मृति वे ग्रंथ हैं जो हमें यह सिखाते हैं कि समाज में हमें कैसे व्यवहार करना चाहिए। यदि मनुष्य समाज में रहता है, तो उसमें करुणा, प्रेम और त्याग होना चाहिए। उसे किसी को हानि नहीं पहुँचानी चाहिए, और जो कमजोर हैं उनकी सहायता करनी चाहिए।

शंकराचार्य ने भी कहा है कि गरीबों की सहायता करनी चाहिए। दान देना चाहिए। इन सभी नियमों और आचरणों को हमारी परम्परा में स्मृति कहा जाता है–जैसेः

- मनुस्मृति
- याज्ञवल्क्य स्मृति
- पराशर स्मृति
- देवल स्मृति

ये सभी हमारे आचरण के नियम बताते हैं।

इस प्रकार, वेद श्रुति हैं और आचरण संबंधी ग्रंथ स्मृति हैं। यही हमारी सभ्यता का आधार है। इस परंपरा में बौद्ध, जैन, शैव, सिख और अन्य सभी दर्शन और परंपराएँ शामिल हैं–रामकृष्ण, श्री अरविंदो आदि सभी इसी मत, सम्प्रदाय, इसी धारा में आते हैं। महान कवि और लेखक इसी ज्ञान से जुड़कर आगे बढ़ते हैं–इसी को वेदमत कहा जाता है।

सुश्री चेतना वशिष्ठः सर, आपने ग्रीक रंगमंच पर भी काम किया है?

प्रो. भरत गुप्तः जी, मैंने कोई व्यावहारिक काम नहीं किया, लेकिन उसका अध्ययन अवश्य किया है। विशेष रूप से ग्रीक रंगमंच–जो उनके प्राचीन थिएटर का पुनरुद्धार था–उस पर मैंने शोध किया। लगभग 1925 से लेकर 1975–80 तक उन्होंने अपने प्राचीन रंगमंच को पुनर्जीवित किया। मैंने इसी विषय पर शोध किया और मुझे इसके लिए ओनेसिस फाउंडेशन से फेलोशिप भी मिली। यह बहुत कठिन और अलग प्रकार का कार्य था।

मैंने वहाँ रहकर यह काम किया और आज भी उन लोगों से मेरा संपर्क है जो इस विषय पर शोध और नाट्य कार्य करते हैं।

सुश्री चेतना वशिष्ठः सर, प्राचीन भारत और ग्रीक रंगमंच के बीच आपने जो "साझा तत्व" खोजे, वह बहुत कठिन कार्य रहा होगा। कृपया संक्षेप में समझाइए।

प्रो. भरत गुप्तः देखिए, मेरे जीवन का मुख्य शोध कार्य यही रहा है। आमतौर पर लोग कहते हैं कि ग्रीक नाटक "पाश्चात्य नाटक" है, लेकिन मैंने इस धारणा को चुनौती दी। मैंने 1994 में एक पुस्तक लिखी–" Dramatic Concepts: Greek and Indian'' ।

इसमें मैंने बताया कि प्राचीन ग्रीक नाटक, भारतीय नाटक के बहुत निकट है। जिसे हम "पश्चिमी नाटक" कहते हैं, वह वास्तव में 500 साल पहले पुनर्जागरण (Renaissance) के समय यूरोप में विकसित हुआ–जैसे शेक्सपियर, क्रिस्टोफर, मार लो, रासीन आदि के द्वारा।

इसलिए प्राचीन ग्रीक नाटक को पश्चिमी नाटक कहना सही नहीं है–यह मैंने अपनी पुस्तक में स्थापित किया।

शुरुआत में यूरोप और अमेरिका के लोग इस बात से सहमत नहीं थे। वे खुद को प्राचीन ग्रीक नाटक का उत्तराधिकारी मानते थे। इसी कारण इस विषय पर काफी बहस हुई, और उसी से यह पुस्तक बनी।आज यह पुस्तक 6–7 बार पुनः प्रकाशित हो चुकी है और दुनिया भर के थिएटर विभागों में पढ़ाई जाती है। न्यूयॉर्क यूनिवर्सिटी, लंदन यूनिवर्सिटी, एडिनबर्ग आदि में भी इसे पढ़ाया गया है। और इस पर चर्चा भी करते हैं।

यह ग्रीस में भी बहुत लोकप्रिय है और अब इसका ग्रीक भाषा में अनुवाद भी हो चुका है।

सुश्री चेतना वशिष्ठः क्या आप कोई उदाहरण दे सकते हैं?

प्रो. भरत गुप्तः हाँ, सबसे पहले समानता दर्शन (philosophy) की है। हम मानते हैं कि मनुष्य इस विशाल ब्रह्मांड में बहुत छोटी हस्ती है।

प्राचीन ग्रीक भी यही मानते थे। यदि आप उनका प्राचीन थिएटर देखें, तो वह खुले स्थान (amphitheatre) में होता था–जहाँ मंच छोटा होता था और पीछे विशाल आकाश या समुद्र दिखाई देता था। इससे दर्शकों को यह अनुभव होता था कि मनुष्य एक छोटे से स्थान में अपना जीवन जी रहा है, जबकि उसके चारों ओर पूरा ब्रह्मांड फैला हुआ है। भारत में भी यही माना जाता है कि मनुष्य अकेला नहीं है–इस सृष्टि में 84 लाख योनियाँ (species) हैं। आधुनिक विज्ञान भी कहता है कि हमारा सौरमंडल केवल एक छोटा–सा हिस्सा है कण की तरह है, और ब्रह्मांड में अनगिनत आकाशगंगाएँ हैं।

भारत में यह भी माना जाता है कि तीन लोक होते हैं:

- देव लोक
- मनुष्य लोक
- पाताल लोक

ग्रीक नाटकों में भी इसी प्रकार के पात्र होते थे–देवता, मनुष्य और पाताल लोक से जुड़े पात्र। उनके नाटकों में देवता भी पात्र के रूप में आते थे–जैसे भारत में भी होता था। जितना स्पष्ट रूप से यहाँ कर्मवाद रहा है कि जो करोगे वो भरोगे ये ग्रीक में भिन्न था क्योंकि वे मनुष्य को देवताओं से बहुत छोटा मानते हैं, उनके यहाँ पुनर्जन्म की धारणा थी, हमारे यहाँ पुनर्जन्म के बहुत व्यवस्थित दर्शन हैं।

एक और समानता यह है कि दोनों संस्कृतियों में स्त्री पात्रों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। जैसे महाभारत में पाँच पांडव हैं, लेकिन कथा को आगे बढ़ाने में द्रौपदी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार, ग्रीक नाटकों में भी स्त्री पात्र बहुत प्रभावशाली होते थे।

आज के समय में हम थोड़ा भटक गए हैं। हम महिलाओं को आधुनिक नारीवाद के दृष्टिकोण से देखने लगे हैं, जो पूरी तरह उचित नहीं है। हमें यह समझना चाहिए कि हमारी परंपरा में महिलाओं की शक्ति, सौंदर्य और वैभव को किस प्रकार पहचाना गया है।

आज के समाज में न केवल महिलाओं का, बल्कि बच्चों का भी शोषण हो रहा है। आधुनिक तकनीक का उपयोग मनुष्य को मुक्त या स्वत्रंत करने के लिए नहीं, बल्कि उसे एक तरह से निर्भर और सीमित बनाने के लिए किया जा रहा है। आज के स्कूलों को देखकर लगता है कि बच्चों को एक तरह से "रोबोट" बनाया जा रहा है। अब AI और नई तकनीकों के कारण बच्चों को स्वयं मेहनत करने की जरूरत कम हो रही है।

तकनीक अपने आप में बुरी नहीं है–यह बहुत अच्छी चीज है। लेकिन इसका गलत उपयोग नहीं होना चाहिए।

अगर बच्चा खुद पढ़कर, सोचकर, नोट्स बनाकर सीखने की कोशिश नहीं करेगा, तो उसका मस्तिष्क कैसे विकसित होगा?

हमारी सोचने की शक्ति कैसे बढ़ेगी? तकनीक आती–जाती रहेगी, लेकिन मनुष्य का मस्तिष्क सबसे श्रेष्ठ है।

हमारी श्रुति–स्मृति परंपरा हमें यही बताती है–

• श्रुति हमें शाश्वत सत्य (ultimate truth) के बारे में बताती है, जो कभी नहीं बदलता।

• स्मृति हमें वह संस्कृति और आचरण सिखाती है, जो समय के अनुसार बदलते रहते हैं।

भारत में हमेशा से परिवर्तन को स्वीकार करने की परंपरा रही है। हम अपने समाज के अनुसार खुद को ढाल लेते हैं, जबकि अन्य समाजों में यह उतना सहज नहीं होता।

सुश्री चेतना वशिष्ठः आप एक अच्छे साहित्यकार हैं, शास्त्रों का गहरा ज्ञान रखते हैं और एक कलाकार भी हैं। फिर आपने अध्यापन के क्षेत्र को क्यों चुना?

प्रो. भरत गुप्तः जी, मैंने अध्यापन का मार्ग इसलिए चुना क्योंकि मैं अपने विचारों और अनुभवों को समाज तक पहुँचाना चाहता था। जब मैंने 1964 में दिल्ली विश्वविद्यालय के सेंट स्टीफेंस कॉलेज में पढ़ाई शुरू की, तभी एक साल के भीतर मैंने तय कर लिया था कि मैं सिविल सेवा में नहीं जाऊँगा–मैं अध्ययन और शिक्षण को ही अपना जीवन बनाऊँगा। मैंने 10 साल तक पं. उमाशंकर मिश्र से सितार सीखा और छोटे–छोटे कार्यक्रम भी किए। लेकिन बाद में मैंने तय किया कि मैं संगीत को करियर नहीं बनाऊँगा, क्योंकि एक साथ दो करियर संभव नहीं हैं।

इसलिए मैंने शिक्षण को चुना–क्योंकि मुझे दर्शन, नाट्य शास्त्र और अकादमिक अध्ययन में गहरी रुचि थी।मैं 1986–87 से नैशनल स्कूल ऑफ ड्रामा में भी पढ़ा रहा हूँ–कभी शेक्सपियर, कभी नाट्य शास्त्र, अतिथि शिक्षक के रूप में। यह जानकर बहुत अच्छा लगता है कि आज यहाँ पढ़ाने वाले कई लोग मेरे ही छात्र रहे हैं।

सुश्री चेतना वशिष्ठः आपका बहुत बहुत धन्यवाद सर।

सम्पर्क सूत्र : चेतना वशिष्ठ, सहायक निदेशक (रा.भा.) एन.एस.डी.
E-mail: vashishtchetna@gmail.com

भारत मन में बसता है

डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा

हर व्यक्ति चाहे वह जिस भी देश, धर्म या जाति का हो माँ, मातृभाषा और मातृभूमि के प्रति उसका जीवन पर्यन्त नैसर्गिक लगाव होता है पर विदेश में जब वह अपनों से दूर होता है तो वह लगाव अधिक प्रखर और मुखर हो जाता है, वह व्यक्ति के आचरण में, उसकी वाणी में और उसके स्वभाव में प्रतिबिंबित भी होता है। विदेश के पूर्णतः नए परिवेश में भी वह डीएनए की तरह उसके स्वभाव का अंग बनकर रहता है।

यदि आप विदेश में और विशेषकर ऐसे देश में हों जहाँ न कोई आपकी भाषा समझता हो और न आप उस देश की भाषा समझते हों और कोई अनजान व्यक्ति आपको देखकर सार्वजनिक स्थान में 'मेरा जूता है जापानी में पतलून इंग्लिशस्तानी'–फिल्मी गाना मधुर स्वर में गुनगुनाए और आपको देखकर मुस्कुराए तो आपको नए अनजान देश में कैसा लगेगा और उस समय आपकी प्रतिक्रिया क्या होगी? मुझे लगता है कि वह व्यक्ति आपको यह बताना चाहता है कि उसे हिंदी से, हिन्दुस्तान से लगाव है जिसे सुनकर आपको अपने देश की याद आएगी और नए देश के वातावरण में आपको स्वीकृति की सुगंधि का आभास होगा। सर्वथा नए परिवेश में कोई आपकी, आपके देश की बात करे तो अज्ञात और अपरिचय का डर कम होता लगता है। मुझे उस व्यक्ति की यह अदा मन ही मन अच्छी लगी और मैने भी उसका यह सर्वथा नया संगीतमय अभिवादन मुस्कुराकर स्वीकार किया। आगे बात का तो प्रश्न ही नहीं था क्योंकि हम दोनों को ही एक दूसरे की भाषा नहीं आती थी। जब भाषा असहाय हो जाती है और काम नहीं करती तो हम आंगिक चेष्टाओं का सहारा लेते हैं। मुझे उस व्यक्ति का यह संगीतमय अभिवादन अच्छा लगा और आज भी 52 वर्षों के लम्बे अंतराल के बाद भी यह घटना अच्छी तरह याद है। प्रश्न मन में उठता है कि उस व्यक्ति ने यह गाना मुझे देखकर क्यों गुनगुनाया।

संभवतः उस व्यक्ति को लगा होगा कि विदेश में जहां मेरी भाषा कोई नहीं जानता वहाँ उसके इस गाने से भारतीय होने के नाते मुझे अच्छा लगेगा और अपरिचय का सन्नाटा कम होगा। मुझे नए देश में आत्मीयता का आभास होगा क्योंकि हर व्यक्ति को जैसे अपने देश से लगाव होता है मुझे भी अपनापन लगेगा और उसका यह गाना मेरे मन को अनजान क्षितिज के भय से मुक्त करेगा। समाज मनोविज्ञान भी इसकी पुष्टि करता है कि विदेश में जब कोई आपके देश की बात करता है आपको अच्छा लगता है। यही है जब आप विदेश में होते हैं उस समय अधिक 'भारत' की याद आती है और 'भारत मन में बसता है।

वर्ष 1974 में भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद की ओर से मेरी प्रतिनियुक्ति बल्गारिया के सोफिया विश्वविद्यालय 'क्लिमेंत ओहरिद्स्की' में सांस्कृतिक विनिमय योजना के अधीन हिंदी पढ़ाने के लिए हुई थी। यह वह समय था जब देश में अंग्रेजी बोलने वाले या समझने वाले नहीं के बराबर थे। रूसी भाषा देश में ज्ञान विज्ञान की भाषा थी। हिंदी जानने वाला तो उस समय एक भी विदेशी मुझे नहीं मिला पर हिंदी फिल्मों के लोग वहां बहुत शौकीन थे। मेरे छात्रों ने मुझे बताया था हिंदी फिल्म 'हाथी मेरे साथी' (रूसी अनुवाद में) देश में छः महीने से भी अधिक समय तक चली और बहुत ही लोकप्रिय रही। फिल्म के हिन्दी गाने **'चल–चल–चल मेरे साथी, मेरे हाथी'** मैंने बहुतों को झूम–झूम कर गाते देखा। उनकी यह सूचना मुझे प्रियकर लगी क्योंकि विदेश में रहते हुए भारत से संबंधित हर बात मुझे अपनत्व का बोध कराती है क्योंकि 'भारत मन में बसता है'।

व्यक्ति किसी भी देश का, किसी भी जाति और वर्ण का हो, माँ, मातृभाषा और मातृभूमि से भावनात्मक दृष्टि से वह जुड़ा रहता है। संकट के समय माँ ही याद आती है, जब आप घोर पीड़ा में होते हैं तो अपनी भाषा में ही भाव अभिव्यक्त होते हैं और विदेश में रहते हुए जब कभी आप पर संकट आता है आप अपने ही देश को याद करते हैं। माँ, मातृभाषा और मातृभूमि का लगाव व्यक्ति को जीवन पर्यंत बाँधे रखता है। यह लगाव एक पीढ़ी ही नहीं, पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। यह लगाव आपके संस्कार, आपके जीवन मूल्यों और जीवन यापन में–खान–पान में, आचार–विचार में दिखता भी है। आप अपने देश का नाम बताकर अपने को गौरवान्वित अनुभव करते हैं, आपकी भाषिक अभिव्यक्ति में भी आपका वह लगाव झलकता है।

अपने देश से जब हम बाहर विदेश में होते हैं, सुख सुविधा सम्पन्न देश में, तो भी सारी सुविधाओं के बीच कभी आपको माँ के हाथ के बने हुए खाने की याद आती है, परिवार के साथ बैठकर बात करने के सुख के दिन याद आते हैं और जब कभी विदेश में आपको कठिन श्रम करने के बाद भी वहाँ के मूल निवासी आपको विदेशी कहते हैं तो भी आपको अपना ही देश याद आता है जहाँ आप जो चाहे कह सकते हैं, कर सकते हैं क्योंकि देश आपका अपना है। अपना ही तो अपनों की बात सुनता है और कुछ नहीं कहता। यही अपनापन विदेश में नहीं मिलता और इसी के लिए हम अपने देश को याद करते हैं।

विदेश में बसे हुए भारतीयों की संख्या आज तीन करोड़ से भी अधिक बताई जाती है जो विदेश विविध कारणों से गये –शिक्षा के लिए, रोजी–रोटी के लिए, धन और विलास पूर्ण जीवन के लिए और फिर वहीं बस गये। उन्होंने वहां की भाषा सीखी, रीति–नीति सीखी और वहां के जन जीवन में रमने के लिए पूरे प्रयत्न किये पर वहां के मूल निवासियों ने उन्हें अपना कहकर कभी अपनाया नहीं, वे बराबर विदेशी ही बने रहे। यही कारण है कि वे विदेश में अपने जातीय समुदाय के बीच ही सीमित रह गये। सदियाँ बीत गईं, साथ साथ रहे, साथ साथ काम भी किया पर बीच में एक लक्ष्मण रेखा बराबर बनी रही जो मूल निवासियों ने आपके लिए खींच रखी थी। अपने देश में अलग–अलग रहते हुए भी हम साथ हैं जबकि विदेश में हम साथ रहते हुए भी अलग–अलग हैं।

मेरा भी लगभग आधा जीवन विदेश में ही बीता, अनेक देशों में रहा, विभिन्न भाषा भाषी देशों में रहा, स्नेह और सद्भाव भी हर जगह मिला पर कहीं और कभी भी ऐसा नहीं लगा कि हम अपने देश में हैं। विदेश का भाव बराबर रहा इसलिए भी क्योंकि विदेशी समाज में मैं कभी पूरी तरह खप नहीं सका।

कहीं खान–पान बाधा बना, तो कभी रहन–सहन और आचार विचार तो कभी भाषा और जीवन मूल्य। कहा जाता है कि विश्व में दो प्रजातियाँ ऐसी है जिनका दूसरी संस्कृति में विलयन नहीं हो पाता–चीनी और भारतीय। इसलिए चाहे चीनी हों या भारतीय,वे जहाँ भी जाते हैं अपने समूह में ही रहना पसन्द करते हैं। यही कारण है कि आप विश्व के किसी भी देश में जाएँ आपको 'मिनी इण्डिया' और 'चाइना टाउन' अवश्य मिलेगा। सिंगापुर में आपको लिटिल इंडिया दिखेगा, मलेशिया में मस्जिद इंडिया, अमरीका में न्यू जर्सी, कनाडा में ब्राम्पटन, इंग्लैंड में साउथ हॉल आदि ऐसे ही स्थान हैं जहाँ भारतीय साथ–साथ रहते हैं। इन जगहों पर जाने पर आपको लगेगा कि आप भारत में ही हैं– एक छोटा भारत। एक भारतीय विदेश में भी स्वदेश बनाकर रहता है। यदि आप विचार करें तो आपको सहज ही ज्ञात हो जाएगा कि देश का मूल निवासी कभी भी आपको अपना नहीं मान पाता। यही कारण है कि नृवंशीय वैशिष्ट्य दो समुदायों को अलग रखता है और ऐसी स्थिति में हमें अपना संस्कार, अपने जीवन मूल्य, आचार– विचार याद आते हैं जो हमें दूसरे नृवंशीय समूह से अलग कर देते हैं। हम भारतीय भी इसके अपवाद नहीं हैं और हम विदेश में कितने दिन रहें, पीढ़ी दर पीढ़ी हम अपना वैशिष्ट्य बनाए रखते हैं। फीजी के राष्ट्र कवि कमला प्रसाद मिश्र की एक बहुत प्रसिद्ध कविता है – 'क्या मैं परदेसी हूँ' जिसमें फीजी देश के सम्बन्ध में अपना अनुभव बताते हुए वे कहते हैं –

धवल सिन्धु तट पर मैं बैठा, अपना मानस बहलाता।
फीजी में पैदा होकर भी, मैं परदेसी कहलाता।।
यह है गोरी नीति, सब भारतीय अब भी कहते।
यद्यपि तन मन धन से, मेरा फीजी से ही है नाता।
भारत के जीवन से फीजी के जीवन में अंतर है।
भारत कितनी दूर वहां पर कौन सदा आता जाता।।
औपनिवेशिक नीति गरल है, नहीं हमें जीने देती।
वे उससे ही खुश रहते हैं जो उनका यश है गाता।।
भारतीय वंशज पग–पग पर, पाता है केवल कंटक।
जंगल को मंगल करके भी, दो क्षण चैन नहीं पाता।।
साहस है, हम सब सह लेंगे, हम भयभीत नहीं होंगे।
पता नहीं कब गति बदलेगा कालचक्र, जग का त्राता।।

(फीजी का सृजनात्मक साहित्य : विमलेश कान्ति वर्मा)

प्रवास धन, पद और ऐश्वर्य देता है पर आंतरिक सुरक्षा, सद्भाव और सम्मान से आपको जीवन पर्यंत ही नहीं पीढ़ी दर पीढ़ी वंचित भी रखता है। भारतीयों के विदेश गमन का इतिहास लगभग 1500 वर्ष पुराना है। भारत से विदेश जाने वाले सबसे पहले राजस्थान प्रदेश के वे घुमन्तू बनजारे थे जो नाच गाकर और तरह–तरह के करतब दिखाकर लोगों का मनोरंजन करते थे और बख्शीश में मिले हुए पैसे से अपनी और परिवार की जीविका चलाते थे और इस आजीविका के लिए परिवार का हर सदस्य कुछ न कुछ सहयोग करता था। जब एक जगह से इनका मन भर जाता था तो ये अपना तम्बू उठाते और नई जगह चले जाते और वहां अपना तम्बू गाड़ देते और तरह तरह के करतब दिखाकर अपने खाने–पीने की व्यवस्था करते। आज भी विश्व के अनेक देशों में विशेषकर यूरोप के देशों में आपको ये मिल जायेंगे। आज ये हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई तीनों धर्मों के मानने वाले हैं। आज कहीं ये 'स्तिसगनी', कहीं 'जिप्सी' तो कहीं 'रोमा' कहे जाते हैं। मुझे आज भी एक घटना याद आती है जब मैं बल्गारिया के सोफिया विश्वविद्यालय में हिंदी प्राध्यापक था

(1974–1978)। मैंने अपनी कक्षा में एक सौम्य और सुदर्शन नया छात्र देखा। कक्षा के बाद वह छात्र मेरे पास आया और बोला मेरा नाम मुस्तफा अलियेव है और 'मैं' और 'आप' दोनों भाई–भाई हैं। यह वह समय था जब बल्गारिया में भारतीय दूतावास और भारत से पढ़ने आये कुछ छात्र ही भारतीय थे। मुस्तफा की बात मुझे समझ नहीं आई, पर मैं चुप रहा। अपनी बात की पुष्टि के लिए उसने अपनी भाषा के कई शब्द मुझे बताये और कहा कि ये शब्द हिंदी में हैं और मेरी भाषा में भी। मैंने पूछा आपकी भाषा का नाम क्या है ? उसने कहा मेरी भाषा का नाम 'रोमा' है पर यहाँ बल्गारिया में इसे 'स्त्सिगनी' भाषा कहते हैं। मुस्तफा ने मुझे यह भी बताया कि 'स्त्सिगनी' बल्गारिया में हेयता वाचक शब्द है और हम लोगों को यहाँ के लोग पसंद नहीं करते हैं क्योंकि हम गरीब हैं। जब मुस्तफा ने मुझसे कहा कि हम दोनों भारतीय हैं, हम दोनों एक ही भाषा बोलते हैं तो भाषाविज्ञान का छात्र होने के कारण मैंने उसे घर आने और साथ ही भोजन करने का निमंत्रण दिया जिससे मैं सारी बात और अधिक ठीक से समझ सकूँ। श्री मुस्तफा अलिएव मेरे घर आए, उनकी आयु मेरे बराबर ही रही होगी फिर उनके निमंत्रण पर मैं उनके घर भी गया और उनके परिवार से भी परिचित हुआ। हम दोनों ने 'रोमा –हिंदी शब्द कोश' बनाने की योजना भी बनाई, बहुत काम हो भी गया पर मैं बार– बार विदेश जाने के कारण उसे पूरा न कर सका। कई मित्रों – श्री वीर राजेन्द्र ऋषि, श्री श्याम सिंह शशि तथा प्रो. लोकेश चंद आदि कई मित्रों ने पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन भी दिया पर मेरी ही अकर्मण्यता के कारण वह आज तक पूरा न हो सका और मैं दूसरे विषयों में उलझ गया। श्री मुस्तफा का यह सन्दर्भ मैं इसलिए दे रहा हूँ कि मातृभाषा, भाषा की समानता–रोमा और हिंदी व्यक्ति को निकट लाती है और हम दोनों घनिष्ठ मित्र बन गये। श्री मुस्तफा अलिएव (श्री रुमानोव) कालान्तर में बल्गारिया के प्रमुख सांसद भी बने और उन्होंने रोमा भाषा और संस्कृति पर बहुत शोध कार्य भी किया।

आज से लगभग दो सौ वर्ष पहले हजारों भारतीय गिरमिट प्रथा के अधीन मारीशस (1834) गुयाना (1838), त्रिनिदाद व टोबागो (1845), दक्षिण अफ्रीका (1860) और फीजी (1879) आदि देशों में गये थे। अपने रात दिन के कठिन श्रम से उन्होंने देश को संपन्न बनाया पर देश के मूल निवासियों ने उन्हें कभी मन से स्वीकार नहीं किया। जब कभी अपनी योग्यता और श्रम से भारतीयों ने देश की सत्ता में भागीदारी चाही, मूल निवासियों की ओर से भारी विरोध हुआ। फीजी इसका जीवंत उदाहरण हैं जहाँ तख्ता पलट के कई बार प्रयत्न हुए और अनेक भारतीय देश छोड़कर अन्य देश जाने

की सोचने लगे। फीजी में मेरे कार्यकाल के समय (1984 –1987) में जहाँ देश में भारतीयों का जनसंख्या प्रतिशत 52 था वहां आज वह प्रतिशत बहुत कम रह गया। नए अपनाए गये और कठिन श्रम से सींचे गये देश में असुरक्षा और अप्रतिष्ठा के कारण वर्षों से बसे भारतीय निकटवर्ती देशों यथा ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, अमरीका और कनाडा चले गये। फीजी के अतिरिक्त अन्य गिरमिटिया देशों में जहां भारतीय सत्ताधारी बने, सब कुछ होते हुए भी भारत उनके मन में बसता है और सच यह है कि वहां के मूल निवासी इस स्थिति से बहुत प्रसन्न नहीं दिखते। अपनी जड़ों की खोज में भारतीयों की आज भी रुचि है और यह रुचि पांचवीं और छठी पीढ़ी के बाद भी वैसी ही बनी हुई है जैसी उनके दादा–परदादा और आजा–आजी में थी जो लगभग दो सौ वर्ष पहले इस नई विदेशी भूमि पर रंगीन सपनों को साथ

लिए आये थे। यही है अपने भारत के प्रति गहरा लगाव जो देश से दूर रहने पर और अधिक बढ़ जाता है।

विदेश में माँ, मातृभाषा और मातृभूमि तीनों आपको बहुत याद आते हैं। यही तीन शब्द मिलकर 'भारत' बनाते हैं। इन तीनों शब्दों का मूल यदि आप ध्यान दें तो माँ में ही निहित है। 'माँ' निरुक्त की दृष्टि से संस्कृत का शब्द 'मातृ' है। माँ, ममता का पर्याय है। यह माँ या माँ जैसी ममता ही है जो आजीवन व्यक्ति के साथ रहती है और अपनी जड़ों से उसे जोड़े रखती है। 'माँ', भाषा और संस्कार सिखाती है, 'भाषा' ममता को अभिव्यक्ति देती है और 'भूमि' व्यक्ति को विदेश में उसकी पहचान देती है। स्वदेश में रहने वाला व्यक्ति तीनों की सुलभता के कारण यह अनुभव नहीं कर पाता पर विदेश के नए परिवेश और संस्कृति में रहनेवाला व्यक्ति इन तीनों को बड़ी गहराई से अनुभव करता है, बस अंतर केवल उसके परिवर्तित क्रम में है। पहले स्वदेश (मातृभूमि) की याद आती है, फिर मातृभाषा की और फिर माँ और परिवार की। यह व्यतिक्रम नैसर्गिक इसलिए है कि पहली पहचान देश फिर भाषा और फिर परिवार–और परिवार का केंद्र माँ है।

देश की पहचान उसकी संस्कृति और उसके जीवन मूल्य हैं। भारत की पहचान प्रभु श्रीराम और उनके अनन्य भक्त अतुलित बलशाली पवनपुत्र हनुमान हैं, उनसे जुड़े सांस्कृतिक पर्व और त्यौहार रामनवमी, दशहरा और दीपावली हैं, अमृत सदृश जल देने वाली पतित पावनी गंगा है, देववाणी संस्कृत तथा भारत की भाषा हिंदी है। भारत के बाहर सभी देशों में भारतीय कैसे भारतीय सांस्कृतिक प्रतीकों को संजोये हुए हैं यह देखकर आश्चर्य होता हैं। प्रभु राम और रामभक्त हनुमान की यशोगाथा सभी गिरमिटिया देशों में बिना अपवाद के गाँव गाँव में प्रति सप्ताह शनिवार और रविवार को आयोजित रामायण मंडलियों में दिखती हैं जहाँ बाल– वृद्ध, नर –नारी, नेता–अभिनेता सभी बड़े उत्साह और श्रद्धा से रामचरित मानस और हनुमान चालीसा का पाठ करते हैं। राम तो हर प्रवासी के मन में बसे हुए हैं चाहे वह किसी भी देश का हो। भगवान राम का जीवन तो गिरमिटिया काल के कठिन दिनों में उनके लिए सांत्वना का स्रोत रहा है। उन्हें लगता है कि राम के 14 वर्ष वनवास में बीते और वे वापस अयोध्या जा सके तो उनके गिरमिट काल के पांच वर्ष भी जल्दी बीत जायेंगे और वे वापस सकुशल अपने देश वापस जा सकेंगे। राम का जीवन उनके लिए आशा के दीप के समान है। देखें एक लोकगीत में एक गिरमिटिया की भावाभिव्यक्ति में आशा के स्वर –

राम बनिइहैं तो बन जइहै, बिगड़ी बनत–बनत बन जाहि।
चौदह बरिस रहे बनवासी, लौटे पुनि अयोध्या माहिं।।
ऐसे दिन हमरे कटि जइहैं, बंधुवन के दिन जइहैं बीत।
पुनः मिलन हमरो होइ जइहै, जइहै रात भयंकर बीत।।

(मारीशस का हिंदी साहित्यः विमलेश कान्ति वर्मा)

इतना ही नहीं कवि बापू के नाम से अभिहित मोहनदास करमचंद गांधी के व्यक्तित्व को और उनके योगदान को भी स्मरण करता है जिन्होंने अंग्रेजी शासन से भारत को मुक्ति दिलाई। मारीशस के राष्ट्रकवि ब्रजेन्द्र कुमार भगत 'मधुकर'

बापू की याद करते हुए लिखते हैं –

बापू जग के पार लगवलन
सुधा सिन्धु के धार बहवलन
खाली भारत के ही नाहीं
दुनिया के उद्धार करवलन
सकल अहिंसा के बल पर ही
हिंसा के अंगार बुझवलन।

(मारीशस का हिंदी साहित्यः विमलेश कान्ति वर्मा)

भाषा के प्रति लगाव और उसकी प्रतिष्ठा की इच्छा उसके मन में बराबर रहती है। प्रवासी को लगता है कि भाषा ही संस्कृति का आधार स्तम्भ है, उसको बचाना और उसको प्रतिष्ठित करना सबसे अधिक आवश्यक है क्योंकि उसे लगता है कि भाषा गई तो संस्कृति गई। भारत बहु भाषी देश है, भारत की सभी भाषाएँ समृद्ध हैं पर सब भारतीयों को भाषा से जोड़नेवाली भाषा हिंदी है, इसलिए हिंदी को सुरक्षित रखना और हिंदी को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रवासी प्रतिबद्ध हैं। सूरीनाम के राष्ट्रीय कवि पंडित हरिदेव सहतू अपनी एक कविता में देखिये कितने जोरदार शब्दों में कहते हैं –

हम तोहके का बोली
बोली–बोली
भाषा बोली
अवधी कि भोजपुरी
हम तोहके का बोली ?
सरनामी कि सरनामी हिंदी
हिन्दुस्तानी कि सरनामी हिन्दुस्तानी
हम तोहके का बोली ?
मानक हिंदी कि खड़ी बोली
टूटल भाषा कि अइली–गइली
हम तोहके का बोली ?
अपन भाषा में एक बात बोली
तोहसे हम्मे बहुत है प्यार
महतारी भाषा हमार !

(सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य,
विमलेश कान्ति वर्मा व भावना सक्सेना)

माता–पिता, बेटे–बेटी, भाई–बहन, गाँव–चौबारा, खेत–खलिहान तो प्रवासी को हर क्षण याद आते हैं–वे तो उसके अन्तरंग जीवन से जुड़े हुए हैं। उसके ये भाव आपको गिरमिट गीतों में मिलेंगे जो किसी भी संवेदन शील व्यक्ति को रुला देंगे। मैने विविध राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय प्रवासी सम्मेलनों में देखा है जब गिरमिट गीत धीरा जी सस्वर मंच पर प्रस्तुत करती थीं तो प्रबुद्ध श्रोता अपने आंसू पोंछते दिखते थे। एक गिरमिट गीत की बानगी देखिये –

काली कोठारिया माँ बीते नाहि रतिया हो,
किसके बताई हम पीर रे बिदेसिया।
दिन रात बीती हमरी दुःख में उमरिया हो,
सूखा सब नैनुआ के नीर रे बिदेसिया।
खून पसीने से सींचे हम बगिया,
बैठा–बैठा हुकुम चलाये रे बिदेसिया।
फिरंगिया के रजुआ मा छूटा मोर देसवा हो,
गोरी सरकार चली चाल रे बिदेसिया।।
जो मैं ऐसा जानती फीजी जाए दुःख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती फीजी न जइयो कोय।।

(फीजी में हिंदी : स्वरूप और विकास
विमलेश कान्ति वर्मा व धीरा वर्मा)

छायावादी काव्यधारा के प्रमुख स्तम्भ कवि सुमित्रानंदन पन्त की एक कविता है – 'सुख–दुःख' और कविता की पंक्ति है –

'सुख–दुःख की निशा–दिवा में
सोता–जगता जग जीवन'।

(सुमित्रानंदन पन्त)

जीवन में सुख और दुःख साथ–साथ उसी प्रकार चलते हैं जैसे दिन और रात। रात अगले दिन की आशा दिलाती है और व्यक्ति के मन में उत्साह भर देती है। विदेश में सुख के दिनों में जहाँ माँ और मातृभूमि का स्मरण व्यक्ति करता है उसी प्रकार दुःख के दिनों में भी ये दोनों ही याद आते हैं और इस सुख–दुःख की अभिव्यक्ति आपको उसके साहित्य में बड़ी प्रभावी दिखेगी। प्रवास की यही विडम्बना है कि इनकी स्मृतियाँ ही संजीवनी का काम करती हैं। भारत हर प्रवासी के मन–मंदिर में अहर्निश उसी प्रकार निरंतर वास करता है जैसे शरीर में प्राणवायु। अपने देश की स्मृति के बिना प्रवासी भारतीय रह नहीं सकता। इसीलिए प्रवासी सर्वदा कहता है – मन में भारत बसता है।

संपर्क सूत्रः डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा,
प्रख्यात भाषा वैज्ञानिक
Email: vimleshkanti@gmail.com

भरत के नाट्यशास्त्र की समकालीन प्रासंगिता

प्रो. देवेन्द्र राज अंकुर

प्रायः छात्रों, रंगकर्मियों, शोध अध्येताओं और विद्वानों में भी इस बात को लेकर जिज्ञासा बनी रही है कि अंततः लगभग दो–ढाई हजार साल पहले रचित भरत के नाट्यशास्त्र और उसकी विषय वस्तु की आज हमारे लिए क्या सार्थकता और प्रासंगिकता है जबकि वह किसी भी रूप में हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी और हमारे रचनात्मक काम से बिलकुल भी जुड़ा हुआ नहीं है। हमारे विचार में नाट्यशास्त्र को लेकर की गई उपर्युक्त टिप्पणी बिलकुल सतही जान पड़ती है। यदि हम विषय की गहराई में जायें तो हम पायेंगे कि स्वयं भरत ने नाट्यशास्त्र जैसे ग्रन्थ की रचना लोक के व्यावहारिक अनुभव और पर्यवेक्षण के बाद ही की थी, न कि अपने किसी एकान्त में बैठकर। अतः यह स्वाभाविक ही था कि नाट्यशास्त्र अपने समय और अपने बाद के समय में जाने वाले रंगकर्म के लिए एक जरूरी संदर्भ ग्रन्थ के रूप में काम आया। यह अलग बात है कि मध्यकाल में देश की बदलती सांस्कृतिक, भौगोलिक और राजनैतिक परिस्थितियों के कारण भरत के नाट्यशास्त्र द्वारा प्रवर्तित शास्त्रीय नाट्य एवं रंग परम्परा का अवसान होता चला गया। लेकिन यह कहना बिलकुल सही नहीं है कि वह परम्परा पूरी तरह से लुप्त हो गई। हम कहना चाहेंगे कि इसके विपरीत वह परम्परा लोक रंगमंच, पारसी रंगमंच से होती हुई आज के रंगमंच की पृष्ठभूमि में भी अन्तः सलिता की तरह निरन्तर प्रवाहमान रही है। यही कारण है कि भरत का नाट्यशास्त्र हमारे लिए उतना ही समकालीन और प्रासंगिक है, जितना कि वह अपने समय में रहा होगा।

आइए, सबसे पहले, हम नाट्यशास्त्र के प्रतिपाद्य कुछ प्रमुख बिन्दुओं की चर्चा करें जो सीधे–सीधे हमारे अपने रंगकर्म से जुड़ते हैं। नाट्यशास्त्र का पहला ही अध्याय नाट्योत्पत्ति शीर्षक के अन्तर्गत हमारे देश में नाटक और रंगमंच जन्म की कहानी से आरम्भ होता है। भरत ने जिस रूप में इसे प्रस्तुत किया है, वह एक वास्तविक घटना न होकर एक मिथक जान पड़ती है, जब वह उसे इन्द्र आदि देवताओं द्वारा ब्रह्मा से किसी ऐसे खेल या कला को जन्म देने की प्रार्थना करने से जोड़ते हैं जिसे देखा भी जा सके और सुना भी जा सके। देवताओं को यह खेल इसलिए चाहिए क्योंकि समाज में जनमानस दिगभ्रमित है, भ्रष्टाचार में लिप्त है। पहले से रचित चारों वेदों का पठन–पाठन सबके लिए निषिद्ध है। अतः ऐसे समय में ऐसी कला की बेहद जरूरत है जो उनके जीवन में निखार ला सके और उसमें पूरे समाज की भागीदारी हो।

यदि हम उपर्युक्त मिथकीय कथा की गहराई में जायें तो हमें भरत के निहितार्थ तक पहुँचने में कोई दुविधा नहीं होगी। क्या यह कथा परोक्ष रूप में इस सत्य का उद्घाटन नहीं करती कि भरत के अपने समय में जो रंगमंच हो रहा था, वह अपनी गुणवत्ता में इतना नीचे गिर चुका था कि उसमें निखार लाने की तुरन्त जरूरत थी और भरत ने अपने नाट्यशास्त्र के माध्यम से उसी परिष्कृत अथवा शास्त्रीय रंगमंच का एक आदर्श प्रस्तुत किया। हम चाहें तो स्वयं अपने समय में घटित हो रहे रंगमंच से कुछ उदाहरणों द्वारा अपनी स्थापना की पुष्टि कर सकते हैं। साठ–सत्तर के दशकों में दिल्ली में पंजाबी रंगमंच के नाम पर मंच पर केवल द्विअर्थी संवादों के माध्यम से दर्शकों का मनोरंजन किया जाता था। कुछ दिन बेशक वह रंगमंच बेहद लोकप्रिय रहा लेकिन जब उसकी अति हो गई तो समाज ने स्वयं उसे नकार दिया। इसी के समानान्तर सत्तर के दशक में 'हयवदन', 'घासीराम कोतवाल', 'बकरी', 'रस गन्धर्व', 'जो कुमार स्वामी' जैसी लोकप्रिय और कल्पनाशील प्रस्तुतियों के

बाद ऐसी प्रस्तुतियों की बाढ़ आ गई जिनमें जबरदस्ती लोक तत्वों को आरोपित किया गया था। अन्ततः परिणाम वही हुआ कि धीरे–धीरे वह धारा भी दर्शक वर्ग द्वारा स्वयं ही नकार दी गई। कहने का तात्पर्य यही है कि भरत का मिथक आज भी अपने आप को दोहराता रहता है, जब पहले से प्रचलित नाट्य परम्परा शिखर को छूने के बाद नीचे गिरने लगती है और एक नई परम्परा का जन्म होता है।

भरत ने नाटकों के मंचन के लिए विकृष्ट मध्यम नाट्यमंडप के रूप में जिस स्पेस का प्रावधान किया है, वह आज हमारी नाटक देखने की पद्धति से कितनी साम्यता रखता है! अर्थात आमने–सामने बैठकर देखना। आश्चर्य होता है कि नाटक देखने की जिस पद्धति ने पश्चिम में भी सोलहवीं–सत्रहवीं शती में जन्म लिया, उसकी खोज भरत ने न जाने कितने पहले कर ली थी। कहा जाता है कि हमारे यहाँ पहले कथावाचन या कथागायन परम्परा का जन्म हुआ था, जिससे बाद में रंगमंच का पूर्ण विकास हुआ। यह ध्यान दिलाना जरूरी है कि कथावाचन या गायन सदा आमने–सामने की स्थिति में ही सम्भव होता है। प्रेक्षागृह में दर्शक दीर्घा की सोपानाकृति के रूप मे उपस्थिति क्या आज के ही किसी सभागार की याद नहीं दिलाती ताकि सभी दर्शकों को मंच पर हो रहे कार्यव्यापार को बिना किसी अवरोध के देखने में सुविधा हो। मंच के अगले भाग के लिए रंगपीठ और पिछले भाग के लिए रंगशीर्ष जैसी संज्ञाएँ डाउन स्टेज और अप स्टेज से कितनी मिलती जुलती हैं। प्रेक्षागृह में प्रवेश के लिए मंच के ठीक सामने दर्शक दीर्घा के पीछे वाली दीवार में एक मुख्यद्वार, दर्शकों के बाएँ–दाएँ वाली दीवारों में मंच के पास दो द्वार– क्या आज भी हमारे प्रेक्षागृह पूरी तरह से इसी नियम का अनुकरण नहीं करते? चाहें तो मंच के पीछे नेपथ्य की अवधारणा को भी हम सहज ही रेखांकित कर सकते हैं।

ये तो हुई प्रेक्षागृह के स्थापत्य से जुड़ी कुछ मुख्य समानताएँ जो आज के रंगकर्मी को अनायास ही दीख जाती हैं। इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं वे तत्व जो भरत के यहाँ किसी भी प्रदर्शन से पहले पूर्वरंग के रूप में दिखाई पड़ते हैं। जैसा कि पूर्वरंग का अर्थ ही अपने आप में स्पष्ट है कि वे गतिविधियाँ, जो प्रदर्शन से पूर्व मंच पर सम्पन्न की जाती हैं। भरत से पहले कभी पूर्वरंग नेपथ्य में ही हो जाया करता था, जैसा कि हमें भास जैसे नाटककार के नाटकों में उपलब्ध रंगनिर्देशों से जानकारी मिलती है। बाद में भरत ने उसे मंच पर ही सम्पन्न करने का प्रावधान कर दिया। पूर्वरंग को मंच पर ले आने के लिए भरत के पास विशेष कारण है। जो दर्शक समय से पूर्व प्रेक्षागृह में आ चुके हैं, उन्हें धीरे–धीरे नाटक की भावस्थिति में जाने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए और ऐसा नाटक के कथ्य और उससे जुड़े रस को केन्द्र में रखकर कुछ गतिविधियों को मंच पर करने से ही सम्भव हो सकता है। यों तो भरत ने पूर्वरंग के अन्तर्गत उन्नीस गतिविधियों का उल्लेख किया है लेकिन उनका स्पष्ट निर्देश है कि पूर्वरंग न तो ज़्यादा लम्बा हो कि प्रेक्षक बोर हो जाएँ और न इतना छोटा कि उसका कुछ प्रभाव ही न पड़े। हर गतिविधि का एक शीर्षक भी दिया गया है लेकिन ज़्यादा महत्व की बात ये है कि ये गतिविधियाँ किसी भी प्रस्तुति का आवश्यक अंग हुआ करती हैं। उदाहरण के लिए सभी वाद्य यन्त्रों को रंगशीर्ष के बीचों बीच संगीतकारों के लिए बने निश्चित स्थल कुतप या वेदिका पर लाकर रखना, संगीतकारों–गायकों का मंच पर जाकर बैठना, अलग–अलग तरह के वाद्यों को ट्यून करना, गायकों का आलाप के माध्यम से अपने सुर को साधना, ट्यून होने के बाद अपने–अपने वाद्यों से एक बार अभ्यास करना, गायकों और वाद्य वृन्द का आपस में मिलकर आशु गीत का गायन–ये सारी गतिविधियाँ वेदिका के सामने दो लोगों द्वारा लाई गई एक रंगपटी के पीछे सम्पन्न की जाती हैं क्योंकि इनमें दृश्य के नाम पर कुछ नहीं है।

पूर्वरंग के उत्तरार्द्ध में दोनो वाहक रंगपटी को लेकर नेपथ्य में चले जाते हैं। मंच पर सूत्रधार अपने हाथ में जर्जर ध्वज लिए प्रवेश

करता है, उसके पीछे–पीछे नटी एक थाली में फूल लिए और विदूषक अथवा कोई पारिपार्श्विक हाथ में एक सुराही लिए आते हैं। ये तीनों मंच के चारों कोनों की परिक्रमा के साथ–साथ फूल और जल छिड़कते हैं, वेदिका पर बैठे संगीतकारों–गायकों का भी फूलों और जल से अभिनन्दन करते हैं, फिर मंच के अगले हिस्से में बीचों–बीच जर्जर ध्वज को स्थापित करके उसकी पूजा करते हैं और उसे ले जाकर वेदिका के पीछे टिका देते हैं। सूत्रधार चारी और महाचारी पदगतियों के माध्यम से अपनी कला का प्रदर्शन करता है। चारी यानी लास्य गतियाँ और महाचारी अर्थात तांडव गतियाँ इसके बाद वे तीनों आपस में त्रिगत नाम से आशु संवाद करते हैं और

मंच से प्रस्थान कर जाते हैं। मंच पर उपस्थित गायक और संगीतकार नान्दीपाठ करते हैं अर्थात नाटककार के उपास्य देवता की स्तुति में गाया जाने वाला गीत, सूत्रधार पुनः मंच पर प्रवेश करता है और प्रस्तावना के माध्यम से कुछ आवश्यक सूचनाएँ दर्शकों को देता है–आज कौन सा नाटक खेला जाने वाला है, उसके रचयिता कौन हैं, वह कहाँ खेला जा रहा है, मंचन के लिए किसने आमंत्रित किया है के साथ–साथ नाटक के कथानक का भी हल्का सा संकेत दे देता है।

यह थी भरत द्वारा प्रस्तावित पूरी पूर्वरंग प्रक्रिया जो नाटक के मंचन से पहले होती थी किन्तु उस मंचन का एक आवश्यक अंग हुआ करती थी। क्या आज हम भी अपनी प्रस्तुति से पहले पूर्वरंग की इसी प्रक्रिया से नहीं गुजरते चाहे उसका स्वरूप कितना भी बदल गया हो। आइए, हम अपने रंगमंच में यह किस रूप में घटित होता है उसका एक जायजा लेते हैं–दर्शक सभागार में आ चुके हैं, नाटक आरम्भ होने में अभी देर है, सभागार में धीमा– धीमा रिकॉर्डेड संगीत चल रहा है, स्मारिका वितरित की जा चुकी है और दर्शक उसे उलट–पुलट रहे हैं। नेपथ्य में सभी अभिनेता तैयार हो चुके हैं, धूप–अगरबत्ती जलाकर पूजा का अनुष्ठान पूरा हो चुका है, आपस में हाथ मिलाकर बेस्ट ऑफ लक अथवा गले लगकर एक दूसरे को शुभकामनाएँ दे रहे हैं, मिष्ठान बाँटा जा चुका है, एक के बाद एक तीन घंटियाँ बजती हैं, नेपथ्य और प्रेक्षागृह में पूरा अंधकार हो जाता है, फिर धीरे से संगीत अथवा ध्वनि प्रभाव से परदा खुलता है या किसी कोने में प्रकाश का आगमन होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारा पूर्वरंग प्राचीन पूर्वरंग से बिलकुल अलग है लेकिन दोनों का उद्देश्य एक ही है कि धीरे–धीरे दर्शकों को नाटक के मूड में ले जाना। आज नाटक के साथ जुड़ी सारी सूचनाएं हमें ब्रोशर से मिल

जाती हैं, इसलिए अब शास्त्रीय परम्परा वाली प्रस्तावना का कोई अर्थ नहीं रह गया है। सबसे उल्लेखनीय तथ्य यह है कि किसी न किसी रूप में पूर्वरंग दुनिया की प्रत्येक नाट्य परम्परा में आरम्भ से उपस्थित रहा है। हम अपने यहाँ का ही उदाहरण लें तो लोक रंगमंच, पारसी रंगमंच में वह आज भी मौजूद है। आधुनिक या आज के रंगमच में तो हम विस्तार से उसकी पड़ताल चुके हैं। हमें लगता है कि पूर्वरंग की अवधारणा के पीछे हमारे मन–मस्तिष्क में बसी वह शाश्वत भावना जिम्मेदार है जिसके तहत हम कोई भी शुभ या बड़ा काम आरम्भ करने से पहले चाहे अपने भीतर या सामूहिक रूप से किसी अदृश्य शक्ति से आशीर्वाद की अपेक्षा रखते हैं कि सब कुछ अच्छे से सम्पन्न हो जाए।

भरत ने किसी भी प्रस्तुति को करने के लिए दो शैलियों का विकल्प दिया है, जिसे वह धर्मी कहते हैं–लोकधर्मी भार नाट्यधर्मी। लोकधर्मी अर्थात ऐसी शैली जो पूरी तरह से दिन प्रतिदिन के लोक व्यवहार पर आश्रित हो। उदाहरण के लिए हम जिस प्रकार अपने स्वाभाविक रूप में बोलते हैं, चलते हैं और व्यवहार करते है, यदि हम मंच पर भी वैसे ही अभिनय करें तो वह लोकधर्मी कहलायेगी। यदि हम इसके विपरीत अपने अभिनय में स्वाभाविकता को छोड़कर किसी शैली विशेष में अभिनय करें तो वह नाट्यधर्मी कहलायेगी। उदाहरण के लिए गा–गाकर बोलना, हाथ–पैरों के इस्तेमाल में निश्चित मुद्राओं का प्रयोग, नृत्य और गतिविधान का ज़्यादा से ज़्यादा प्रयोग–सीधे–सीधे यदि हम समझना चाहें तो लोकधर्मी को अंग्रेजी के नेचुरलिस्टिक या रियलिस्टक और नाट्यधर्मी को अंग्रेजी के स्टाइलाइज्ड के साथ रखकर देखा जा सकता है। भरत नाट्य प्रदर्शन की इन दो शैलियों के अतिरिक्त एक तीसरी शैली भी सुझाते हैं और वह है मिश्रित अर्थात लोकधर्मी और नाट्यधर्मी के मिश्रण से अपनी एक नई शैली तैयार कर सकते हैं।

इसे दोहराने की जरूरत नहीं कि रंगमंच के जन्म से लेकर आज तक इन्हीं दोनों शैलियों में सम्पूर्ण रंगकर्म होता रहा है। नाटकों की प्रस्तुति शैली से जुड़े जितने भी शब्द आज प्रचलन में हैं, उनकी खोज पश्चिम में उन्नीसवीं शती में हुई और हमारे यहाँ वे भरत के नाट्यशास्त्र में पहले से उपस्थित हैं। इतना ही नहीं, इन दोनों शैलियों को लेकर आज के रंगकर्मी के मन में एक और भ्रम बना हुआ है कि इनमें अभिनय करने के लिए अभिनेता को अलग–अलग रचना–प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है क्या? इस विषय में भरत का स्पष्ट कथन है कि आप चाहे लोकधर्मी में अभिनय कर रहे हैं अथवा नाट्यधर्मी में–आपकी आन्तरिक तैयारी एक जैसी होनी चाहिए। यह अलग बात है कि अभिव्यक्ति के स्तर पर उनमें भिन्नता दिखाई देती है। इसे दूसरे शब्दों में यूँ भी कहा जा सकता है कि कथ्य बेशक एक ही हो लेकिन उसे मंच पर दो अलग–अलग शैलियों से प्रस्तुत किया जा सकता है। हमने स्वयं अपने समय में 'आषाढ़ का एक दिन' और' आधे अधूरे' जैसे यथार्थवादी नाटकों के शैलीबद्ध प्रस्तुतिकरण भी देखे है जो दर्शकों को बहुत ही विश्वसनीय प्रतीत हुए।

यह सही है कि भरत ने लोकधर्मी और नाट्यधर्मी नाम से नाटकों की प्रस्तुति के लिए दो विकल्प सुझाए हैं। प्रत्येक विकल्प पर विस्तार से चिंतन किया है और अन्ततः वह नाट्य प्रयोक्ताओं से नाट्यधर्मी शैली को अपनाने का ही आग्रह करते हैं क्योंकि इसमें ज़्यादा सूक्ष्मता, सांकेतिकता और दर्शको के लिए कल्पना करने की सम्भावना बनी रहती है। लेकिन जहाँ तक इन दोनों शैलियों के नाटकों के लिए पात्र चयन का प्रश्न आता है वे दोनों के लिए एक समान प्रक्रिया अपनाते हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में तीन रास्ते सुझाए हैं। पहला अनुरूपा अर्थात जैसा पात्र और उसका शारीरिक सौष्ठव और व्यक्तित्व है, वैसे ही अभिनेता का उस पात्र के लिए चयन किया जाए। दूसरा विरूपा अर्थात पात्र के व्यक्तित्व के विपरीत अभिनेता का चयन किया जाए और तीसरा रूपानुसारिणी अर्थात जैसा पात्र का रूप, आवाज और हावभाव हैं, उसी के अनुसार अभिनेता का चुनाव किया जाए। उदाहरण के लिए कई अभिनेताओं की आवाज और चेहरा–मोहरा स्त्री से मिलता–जुलता हो सकता है तो उसे उसे उस भूमिका में रखा सकता है। यहाँ इसका उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि इंगलैंड में सोलहवीं शती के ऐलिजाबेथन रंगमंच में नाट्य मंडलियाँ दस–बारह वर्ष के लड़कों को अपनी मंडली में शामिल करके उन्हें स्त्री भूमिकाओं के लिए प्रशिक्षण दिया करती थीं। हम यहाँ विशेष रूप से इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि भरत द्वारा विवेचित पात्र चयन की पद्धति हमारी आज की पद्धति से कहीं अलग नहीं है। कहना तो यह चाहिए कि हम पूरी तरह से उसी पद्धति का अनुकरण करते आ रहे हैं।

हमारे आज के रंगमंच में प्रायः हमने निर्देशकों को कहते सुना है कि किसी भी पात्र के रूप में अभिनेता का मंच

पर प्रवेश और प्रस्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। यह सही भी है कि इससे नाटक में नाटकीयता पैदा होती है। भरत ने भी नाटकों के प्रदर्शन में पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान को विशेष रूप से रेखांकित किया है। उनके यहां प्रत्येक मुख्य पात्र के प्रवेश और प्रस्थान पर मंच पर बैठे गायकों द्वारा ध्रुवागीत गाए जाने का निर्देश दिया गया है। ये ध्रुवागीत प्रस्तुति के अनिवार्य अंग होते थे। इनकी

रचना नाटककारों द्वारा नहीं की जाती थी वरन ये रंग मंडलियों की अपनी आशु रचनाएँ हुआ करती थी। पात्रों के प्रवेश से पूर्व इनका गायन इसलिए किया जाता था कि दर्शकों के लिए आने वाले पात्र के प्रवेश के लिए भावस्थिति तैयार की जा सके। कई बार ये ध्रुवागीत मंच पर हो रहे कार्य–व्यापार के बीच में भी गाए जा सकते थे, यदि किसी पात्र के अन्तर्मन के भावों को दर्शकों तक सम्प्रेषित करना हो। क्या आज हम भी इसी से मिलती–जुलती युक्तियों का प्रयोग नहीं करते? उदाहरण के लिए कोई संगीत या ध्वनि प्रभाव, कभी कोई गीत की पंक्ति ही मन्तव्य आज भी वही रहता है कि किस प्रकार आने वाले प्रवेश या प्रस्थान पर दर्शकों का ध्यान केन्द्रित किया जाए।

नाटकों की मंच–प्रस्तुति के सिलसिले में भरत ने एक बहुत ही नाटकीय रूढ़ि के प्रयोग पर बल दिया है, जिसे वह कक्षा विभाग या कक्ष विभाग कहते हैं। उनके अनुसार नाटक के अलग–अलग कार्य क्षेत्रों की दृष्टि से पूरे मंच को अदृश्य रूप से अलग–अलग कक्षों में विभाजित कर लिया जाता था। मंच पर एक साथ कई कक्षों में गतिविधि हो सकती थी। एक कक्षा में कार्य व्यापार हो सकता था और दूसरा स्थिर रह सकता था। एक सम्भावना यह भी हो सकती थी कि एक कक्ष में संवाद चल रहे हों और दूसरे कक्ष के पात्र उस रंगपटी के पीछे खडे हों या बैठे हों और जब उनका दृश्य आना हो तो वह रंगपटी अचानक से उनके सामने से हटा ली जाए। भरत ने इस रूढ़ि की इसलिए भी परिकल्पना की क्योंकि उनके समय में मंच किसी भी प्रकार की दृश्यसज्जा से रहित हुआ करता था। ऐसे में पहले पात्र उस क्षेत्र का संवाद के माध्यम से परिचय देता था और फिर उस कक्ष में प्रवेश करता था। मंच चूँकि किसी भी प्रकार के दृश्य–विधान से शून्य है तो ऐसे में दर्शकों की कल्पना को असीम विस्तार मिलता था, साथ ही अभिनेता को भी मुद्राओं, गतियों, गीत, संगीत से युक्त नाट्यधर्मिता में जाने का अवसर मिलता था।

हम सहज ही कक्ष विभाग की इस युक्ति को अपने रंगमंच में घटित होते भी देख सकते हैं। कभी मंच पर फ्रीज टैक्नीक के माध्यम से हम मंच के किसी भाग को स्थिर कर सकते हैं, प्रकाश योजना के माध्यम से एक हिस्से को अंधेरे में या धीमे प्रकाश में रखकर दूसरे हिस्से को मुखर कर सकते हैं। मंच पर रौशनी के अलग–अलग दायरों के साथ भरत की रूढ़ि से मिलते जुलते कक्ष स्थापित कर सकते हैं। जाहिर है कि भरत के मंच पर आज की सी प्रकाश योजना का कोई प्रावधान नहीं था, ऐसे में उन्होंने एक खाली मंच को कक्ष विभाग जैसी कल्पनाशील युक्ति से दृश्यमान करने की कोशिश की और भविष्य के रंगमंच के लिए फ्रीज टैक्नीक की सम्भावना को जन्म दे दिया जिसका आज हम अपने रंगमंच में खुलकर प्रयोग कर रहे हैं।

मंच पर बैठी संगीत मंडली किस प्रकार के वाद्य वृन्द का प्रयोग करती थी, इसकी जानकारी भी आज के रंगकर्मी के लिए बहुत ही उपयोगी है। भरत ने आतोद्य शीर्षक के अन्तर्गत उस समय प्रयोग में लाए जाने वाले वाद्यों की चर्चा की है। आतोद्य का शाब्दिक अर्थ ही है संगीत या वाद्य वृन्द। उनके अनुसार वाद्य चार प्रकार के होते हैं– तत्त अर्थात तार से बजने वाले वाद्य। उदाहरण के लिए वीणा, सितार, सरोद, इकतारा आदि।

अवनद्ध अर्थात चमड़े से मढ़े हुए वाद्य। उदाहरण के लिए पखावज, तबला, ढोलक, डमरू, नगाड़ा इत्यादि।

सुषिर अर्थात फूंक या साँस से बजाए जाने वाले वाद्य। उदाहरण के लिए बाँसुरी, शंख इत्यादि। घन अर्थात धातु से बने यन्त्र जिन्हें आपस में टकराकर बजाया जाए। उदाहरण के लिए झाँझ, मजीरा, घंटी इत्यादि।

'यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि आज चाहे कितनी भी तरह के संगीत वाद्य चलन में आ गए हों लेकिन वे अपनी बनावट और प्रयोग में उपर्युक्त चारों प्रकारों के भीतर ही सीमित हैं।

बात संगीत वाद्यों की हो रही है तो यहाँ उनके साथ स्वरों के विषय में कुछ कहना भी समीचीन होगा। हम सभी जानते हैं कि स्वर संख्या में सात हैं– स, र, ग, म, प, ध, नि। स यदि सबसे मन्द्र स्वर है तो नि सबसे उच्च स्वर। हमें याद रखना चाहिए कि भरत ने स्वरों की चर्चा वाचिक अभिनय के अन्तर्गत की है, संगीत के दायरे में नहीं। वह मानते हैं कि स्वर संगीत की अपरिहार्य कड़ी है लेकिन उससे भी ज़्यादा वह वाचिक अभिनय का अंग है। अभिनेता अपने संवादों को बोलते समय इन्हीं स्वरों की सहायता से मंच पर एक स्थिति, एक परिवेश और एक नाटकीय तनाव की सृष्टि करता है। क्या आज भी मंच पर अभिनय करते समय हमें निर्देशक के ऐसे निर्देश नहीं मिलते कि फलाँ संवाद को धीमे बोलो, फलाँ संवाद को थोड़ा ऊँचे सुर में और तेज लय के साथ बोलो इत्यादि। यह एक अध्ययन का विषय हो सकता है कि पूर्व हो या पश्चिम– रंग भाषण प्रशिक्षण की पद्धतियाँ बेशक अलग–अलग हों, लेकिन उन सबका उद्देश्य एक समान है और वह है स्वर साधना। यह बात बहुत बार दोहराई जा चुकी है कि अभिनेता के पास मात्र दो यन्त्र हैं– उसका शरीर और उसकी आवाज। ऐसे में आज के अभिनेता के लिए भरत द्वारा प्रतिपादित स्वर केन्द्रित अध्याय का महत्व और बढ़ जाता है।

भरत ने नाट्य अर्थात रंगमंच के दो और तत्वों की यथास्थान मीमांसा की है। वे हैं– वृत्ति और प्रवृत्ति । इस संदर्भ में वृत्ति का अर्थ है स्वभाव या प्रकृति अर्थात जो नाटक हम करने जा रहे हैं, अभिव्यक्ति के स्तर पर उसकी मूल प्रकृति क्या है? भरत ने नाट्यरचना और प्रस्तुति को लेकर चार वृत्तियों का प्रावधान किया है–

भारती वृत्ति भारती का अर्थ है वाणी। इसलिए भारती वृत्ति का नाटक उसे कहेंगे, जिसमें शब्दों का ज़्यादा से ज़्यादा प्रयोग किया गया हो।

आरभटी वृत्ति आरभटी का अर्थ है अंग संचालन। इसलिए आरभटी वृत्ति का नाटक उसे कहेंगे जिसमें ज़्यादा से ज़्यादा मूवमैंट, नृत्य और गतिविधान का प्रयोग किया गया हो।

कैशिकी वृत्ति कैशिकी का अर्थ है केश विन्यास। इसलिए कैशिकी वृत्ति का नाटक उसे कहेंगे जिसमें ज़्यादा से ज़्यादा केश सज्जा, रूप सज्जा, वेशभूषा आदि पर जोर हो।

सात्वती वृत्ति सात्वती का अर्थ है सत्व से युक्त। इसलिए सात्वती वृत्ति का नाटक उसे कहेंगे जिसमें ज्यादा से ज़्यादा सूक्ष्म और आन्तरिक अभिनय पर जोर दिया जाए।

क्या भाज भी हम किसी नाटक को देखने के बाद ऐसा नहीं कहते कि इसमें शब्दजाल बहुत था। स्वाभाविक है कि उसे भारती वृत्ति का नाटक कहा जायेगा।

नृत्य नाटक, मूकाभिनय और ऐसे नाटक जिनमें ज़्यादा से ज्यादा शारीरिक अभिनय का प्रयोग किया गया हो, वे आरभटी वृत्ति के नाटक कहे जायेंगे।

हम आज भी प्रायः ऐसी अभिव्यक्तियों से रूबरू होते हैं जैसे कि कास्ट्यूम ड्रामा अथवा पीरियड प्ले इत्यादि। स्वाभाविक है कि ये संज्ञाएँ ऐसे नाटकों की ओर संकेत करती हैं जिनमें केश विन्यास, वेशभूषा आदि पर ज़्यादा बल दिया गया हो।

हमारे यहाँ दक्षिण भारत में केरल प्रदेश में आज भी कुडियाट्टम जैसी लोकनाट्य शैली की परम्परा पिछले हजार–बारह सौ सालों से लगातार चली आ रही है, जिसमें संवाद न के बराबर होते हैं लेकिन अभिनेता चेहरे और आँखों के सूक्ष्म हाव–भाव से आलेख के आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। यह शैली सात्वती वृत्ति का उदाहरण है। कभी–कभी हमारे आधुनिक नाटकों में भी ऐसे क्षण मिल जाते हैं जहाँ अभिनेता अपने हृदय के आन्तरिक उद्‌गारों की सूक्ष्म अभिव्यक्ति करता है।

यहाँ इसका उल्लेख करके हम आगे बढ़ सकते हैं कि ये चारों वृत्तियाँ–भारती, आरभटी, कैशिकी और सात्वती अन्ततः क्रमशः वाचिक अभिनय आंगिक अभिनय आहार्य अभिनय और सात्विक अभिनय के साथ जुड़ जाती हैं।

इसी क्रम में हम प्रवृत्ति का भी विश्लेषण कर सकते हैं। प्रवृत्ति का अर्थ है पात्रों का आचार–व्यवहार, उनके बोलने और चलने का ढंग और उनकी वेशभूषा इत्यादि– कुल मिलाकर पात्रों की पृष्ठभूमि और उनका व्यक्तित्व– इनकी बाह्य अभिव्यक्ति। जिस तरह से भरत ने चार वृत्तियों का प्रावधान किया है, उसी प्रकार प्रवृत्तियाँ भी चार रखी हैं–

पांचाली प्रवृत्ति– उन पात्रों से सम्बद्ध जो पांचाल क्षेत्र से आते हैं। आज हम उसे उत्तरी भारत कह सकते हैं।

दाक्षिणात्य प्रवृत्ति जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसके अन्तर्गत वे पात्र आयेंगे जो दक्षिण भारत से सम्बद्ध हैं।

आवन्ती प्रवृत्ति उन पात्रों से सम्बद्ध जो आवन्ती प्रदेश से हैं अर्थात पश्चिमी भारत से जुड़े हुए हैं

औद्रमागधी प्रवृत्ति उन पात्रों से सम्बद्ध जो पूर्वी भारत से आते हैं।

आज भी भारत को भौगोलिक दृष्टि से उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम इन्हीं चार भागों में बाँटा जाता है। नाटक में अलग–अलग प्रान्तों के पात्र आते हैं। स्पष्ट है कि उनकी बोली, भाषा, पहनावा, खान–पान अपनी–अपनी विशिष्टता लिए हुए होगा। जब हम किसी नाटक में किसी चरित्र का अभिनय करते हैं तो क्या हम इन सब बातों की गहराई में नहीं जाते– अपने चरित्र को ज़्यादा से ज़्यादा विश्वसनीय बनाने के लिए? यही कारण है कि दर्शक भी उस पात्र के साथ एक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है।

किसी नाटक की सफलता के क्या प्रतिमान हो सकते हैं उसके लिए भरत ने सिद्धि का प्रावधान किया है। सिद्धि अर्थात सफलता या उपलब्धि। कोई नाटक दर्शकों द्वारा कैसे सराहा जाता है इसके संदर्भ में नाट्यशास्त्र दो सिद्धियों का उल्लेख करता है–मानुषी सिद्धि और दैवी सिद्धि।

मानुषी सिद्धि का शाब्दिक अर्थ है कि मानवीय अर्थात बाहरी प्रतिक्रिया से मिली सराहना। उदाहरण के लिए जब हम किसी नाटक को देखते हुए जोर–जोर से ताली बजाते हैं, किसी नाटकीय क्षण अथवा अभिनय के किसी अंश पर वाह–वाह कर उठते हैं, खुशी से अपने स्थान से उठकर खड़े हो जाते हैं और कई बार किसी अभिनेता के अभिनय से प्रभावित होकर मंच पर पैसों की वर्षा करने लगते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये सारे उद्गार नाटक की सराहना के लिए ही हैं लेकिन भरत नाटक की इस सफलता को मानुषी सिद्धि के अन्तर्गत रखते हैं। उनकी सोच है कि दर्शकों की उपर्युक्त बाह्य अभिव्यक्ति बेशक नाटक को देखने के बाद सराहना के रूप में ही सामने जाती है, तब भी यह सिद्धि दैवी सिद्धि की तुलना में कमतर ही मानी जायेगी। वास्तव में नाटक की दैवी सिद्धि या सफलता ही वास्तविक सिद्धि कही जायेगी जब दर्शक किसी नाटक को ध्यानमग्न होकर देखते हैं पूरे सभागार में इतना सघन सन्नाटा हो कि तिनके के गिरने की आवाज भी सुनाई दे जाए, कोई अपने स्थान से उठकर नहीं जा रहा, सभी दर्शक मंच पर हो रहे दृश्य के सम्मोहन में अभिभूत हैं और उसके प्रभाव को कहीं गहरे में भीतर तक अनुभूत कर रहे हों। नाटक खत्म होने के बाद भी बहुत देर तक उसके प्रभाव से मुक्त न हो पाएँ–एक अर्थ में आध्यात्मिक अनुभूति। वह नाट्य प्रयोक्ता से यही अपेक्षा करते हैं कि हमें सदैव दैवी सिद्धि की दिशा में प्रयत्नशील रहना चाहिए।

क्या आज भी हमारी यही कोशिश नहीं होती कि हम जो भी मंच प्रस्तुति करें, वह दर्शकों को वर्षों तक याद रहे– यही है सचमुच की दैवी सिद्धि।

भरत ने नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में नाट्य के ग्यारह तत्वों का विवेचन किया है। ये ग्यारह तत्व हैं–रस, भाव, अभिनय, धर्मी, वृत्ति, प्रवृत्ति, स्वर, गान, आतोद्य, सिद्धि और रंग यानी रंगशाला या प्रेक्षागृह। कुल मिलाकर नाट्यशास्त्र के छत्तीस अध्यायों का यही प्रतिपाद्य है। इनमें से पहले तीन को छोड़कर बाकी सबके विषय में हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि वे सब के सब किस रूप में आज भी हमारे रंगमंच के लिए सार्थक और प्रासंगिक हैं और अपनी लगातार उपस्थिति से अपनी निजी पहचान स्थापित करते रहते हैं। अब हम पहले तीन तत्वों अर्थात रस, भाव और अभिनय को लेकर संवाद करना चाहेंगे। इनमें भी अभिनय के विषय में पहले तीन अध्यायों में विस्तारपूर्वक विचार किया जा चुका है, फिर भी यदि कुछ बचा हुआ है तो हम निश्चित रूप से उसे रेखांकित करना चाहेंगे लेकिन पहले हम रस और भाव को ले लें और देखने की कोशिश करें कि हमारे आज के रंगमंच के साथ उनका किस रूप में जुड़ाव है या हो सकता है।

भरत इस विषय में बिलकुल स्पष्ट हैं कि नाट्य प्रस्तुति का अंतिम उद्देश्य क्या है और वह है दर्शकों को रसास्वादन। ये रसास्वादन किस प्रकार सम्पन्न होता है, इसको लेकर नाट्य शास्त्र के छठे और सातवें अध्याय में विस्तार से विचार किया गया है। यहाँ उस विस्तार में जाने का हमारा कोई अभीष्ट नहीं है वरन सीधे–सीधे उसे इस तरह से समझना होगा कि जब कोई प्रस्तुति अनुभूति के रास्ते हमारे भीतर तक उतर कर हमें आह्लादित कर देती है तो हम आनन्द से सराबोर हो उठते हैं। यही सचमुच का रसास्वादन है। यह बाहर कहीं ठोस रूप में नहीं दीखता वरन हम उसे अपने

भीतर अनुभूत करते हैं। अंग्रेजी मे इसे ऐस्थेटिक प्लैजर कहा गया है यानी सौन्दर्यात्मक आनन्द। इससे एक बात तो साफ है कि नाटक का कथ्य चाहे जो हो, उसे देखने का अनुभव अन्ततः आनन्ददायक ही होता है, और इसीलिए वह हमें वर्षों तक याद रहता है। भरत ने इस आनन्द की तुलना ब्रह्मानन्द से की हैं अर्थात नाटक को देखने का आनन्द ऐसा होता है कि मानों हमने ब्रह्मा को पा लिया है। यह तुलना स्वयं में ही प्रमाणित कर देती है कि वह आनन्द कोई ऐसा–वैसा नहीं वरन सबसे उच्च कोटि का आनन्द होता है।

हम स्वयं से ही यह प्रश्न करना चाहेंगे कि क्या हम जब किसी नाटक को देख रहे होते हैं तो इसी आनन्द की तलाश नहीं कर रहे होते। जिस दिन किसी नाटक को देखने के अनुभव में वह आनन्द शामिल हो जाता है तो हम असीम शान्ति से भर उठते हैं। यह अकारण नहीं कि हर युग युग में बड़े–बड़े दार्शनिकों, चिन्तकों और रंग निर्देशकों ने इसी आनन्द को जीवन के सबसे प्रमुख लक्ष्य के रूप में मान्यता दी है। यदि हम स्वयं को मात्र रंगमंच तक भी सीमित रखें तो भरत के बाद जियामी, स्तानिस्लाव्स्की, ग्रोतोव्स्की, ब्रेष्ट के नाम सहज ही लिए जा सकते हैं। यह प्रश्न आज भी उतना ही सार्थक है कि हम संगीत नृत्य कला और रंगमंच के कार्यक्रम को क्यों देखने जाते हैं ? क्या इसका सीधा सा उत्तर यही नहीं है फि पहले हमें आनन्द प्राप्ति हो और फिर अपने जीवन में सुधार और निखार लाने के लिए उससे कोई संदेश भी प्राप्त हो।

रस और भाव का परस्पर बहुत गहरा सम्बन्ध है। भरत तो यहाँ तक कहते हैं कि ऐसा कोई रस नहीं हो सकता जिसमें कोई भाव न हो अथवा ऐसा कोई भाव नहीं हो सकता जिसमें कोई रस न हो। हम इसे यूं ले सकते हैं कि हम सबके भीतर कुछ मूल या स्थायी भाव होते हैं, जिन्हें हम अपने नित्य प्रति के जीवन में अनुभूत करते हैं। इन्हीं भावों को जब हम अभिनय के माध्यम से अनुभूत करते हैं तो ये भाव न रहकर रस में परिवर्तित हो जाते हैं अर्थात नाटक में अभिनय के माध्यम से इनकी अनुभूति सदैव रसमय यानी आनन्ददायक हो जाती है, चाहे जीवन में उन भावों का अनुभव जो भी हो। उदाहरण के लिए जीवन में जब हम दुःख के अनुभव से गुजरते हैं तो हमें सचमुच में दुःख ही होता है लेकिन नाटक में दुःख के क्षण अभिनेताओं के गहरे अभिनय के कारण हमें ऐसे आनन्दायक अनुभव से भर देते हैं जो हमें वर्षों तक याद रहता है। वास्तव में यही है जीवन के भाव की नाटक के रस में बदल जाने की यात्रा–इस पर अलग से कोई टिप्पणी करने की जरूरत नहीं कि रसास्वादन की यही यात्रा उसे सदैव के लिए प्रासंगिक बना देती है।

यह अध्ययन करना भी काफी रोचक है कि अन्ततः सारे तत्व अभिनय में समाहित हो जाते हैं। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि हम बाकी सारे तत्वों को लेकर कितना भी विमर्श कर लें लेकिन दर्शकों के अनुभव में वे अभिनय के माध्यम से ही सम्मिलित होते हैं। भरत ने चहुँमुखी अभिनय की परिकल्पना की है। यदि हम चाहें तो उन्हें अलग–अलग भी परिभाषित कर सकते हैं। भरत ने यदि

उन्हें चार भागों में विभाजित किया है तो उसके ठोस कारण हैं। क्या आज भी जब हम अभिनेता की देहभाषा पर काम कर रहे होते हैं तो उस समय क्या मात्र आंगिक अभिनय पर काम नहीं कर, रहे होते? जब हम अभिनेता की आवाज और रंग भाषण पर काम करते हैं तो उस समय हम मात्र वाचिक अभिनय पर केन्द्रित होते हैं। इसी प्रकार जब हम प्रस्तुति के नेपथ्य पक्ष पर काम करते हैं जिसमे उसकी वेशभूषा, अलंकरण, मंच उपकरण आदि चीजें शामिल रहती हैं तो स्वाभाविक है कि उस दौरान हमारे सामने आहार्य अभिनय ही मुख्य होता है। अन्ततः जब प्रस्तुति के दौरान ये तीनों अभिनय मिलकर सात्त्विक की ओर बढ़ते हैं तो अपने अंतिम रूप अर्थात सामान्य अभिनय में परिणत हो जाते हैं। कहने का अर्थ है कि पहले तीनों अभिनय अभिनेता की तैयारी से सम्बंध हैं और जब ये मंच पर परस्पर सात्त्विक में परिवर्तित हो जाते है तो अभिनय की सम्पूर्णता तक पहुँचते हैं।

हम आज के युवा रंगकर्मी से पूछना चाहेंगे कि उसकी कार्य पद्धति अथवा प्रशिक्षण भरत द्वारा प्रस्तावित प्रक्रिया से कहाँ अलग हैं? आज भी हम अपने प्रशिक्षण के दौरान सबसे पहले अपने शरीर की भाषा पर काम करते हैं– योग, मूवमैंट नृत्य शैली विशेष को इसीलिए रखा जाता है ताकि हमारा शरीर फुर्तीला और लचीला बने ताकि वह हर तरह के नाटक में काम करने के लिए तैयार रहे।

फिर आता है आवाज और रंगभाषण का अभ्यास जिसे अंग्रेजी में वायस और स्पीच कहा जाता है। जाहिर है कि हमारे शब्दों को शरीर ही अपनी गतिशीलता से अभिनय की अभिव्यक्ति में प्रकट करता है। इसी क्रम में आता है आहार्य अभिनय अर्थात चरित्र के रूप में अभिनेता की केश सज्जा, रूप सज्जा, वेशभूषा इत्यादि जो उसके चरित्र को प्रामाणिक और विश्वसनीय तो बनाती ही है, इससे भी ज्यादा वह उसके अभिनय का जरूरी हिस्सा बन जाती है। यह अकारण नहीं कि भरत ने आहार्य को भी अभिनय के अन्तर्गत रखा है। क्या आज भी हम मुख्य प्रदर्शन से पहले वैकल्पिक वेशभूषा, उपकरण या कभी–कभी रूप सज्जा के साथ प्रस्तुति का अभ्यास नहीं करते?

आज रंगमंच में टोटल थियेटर की अवधारणा पर बहुत बल दिया जाता है अर्थात एक ऐसा रंगमंच जिसमें इस कला के सारे अंग तो हों ही, साथ–साथ दूसरी कलाओं का भी समावेश रहे। क्या भरत की अभिनय परिकल्पना हमें ऐसे ही सम्पूर्ण रंगमंच की याद नहीं दिलाती? संक्षेप में हम इतना ही कह सकते हैं कि हम आज किसी भी प्रकार के रंगमंच में काम करें–लोक रंगमंच, पारसी रंगमंच, यथार्थवादी रंगमंच, पूअर थियेटर, तीसरा रंगमंच परिवेशमूलक रंगमंच, महाकाव्यात्क रंगमच और शोषित का रंगमंच–रंगमंच की धुरी अभिनेता है। भरत ने भी अपने नाट्यशास्त्र में उसे केन्द्र में रखा है और छत्तीस अध्यायों में लगभग बीस अध्याय पूरी तरह से अभिनय पर चिन्तन–मनन को समर्पित है। हमें अपने आज के अभिनेता और रंगमंच के लिए उसमें से जितना कुछ मिल सके, उसे लेने में संकोच नहीं करना चाहिए और उसे अपने अभ्यास का अनिवार्य अंग बनाना चाहिए।

पश्चिमी रंगमंच में प्रारम्भ से लेकर आज तक नाट्य लेखन को लेकर जितना भी काम किया गया है, उसमें मुख्य रूप से ये शैलियाँ मिलती है–ट्रेजिडी, कॉमेडी, फार्स, मैलोड्रामा, यथार्थवादी और ब्रेष्टियन नाटक। ये सब शैलियाँ भी लगभग ढाई–तीन हजार साल के भीतर विकसित होती रही हैं। इसके विपरीत भरत ने दशरूपक का विधान प्रस्तुत किया है अर्थात नाट्य रचना के दस प्रकार। वह हर रचना को नाटक नहीं कहते। उनके यहाँ सबके लिए एक सामान्य नाम रूपक मिलता है– नाटक, प्रकरण, अंक, प्रहसन, व्यायोग, समवकार, ईहामृग, डिम, भाण और वीथि। ये सभी रूपक अपने कथानक, मुख्य रस, अपने आकार और नायक की दृष्टि से अलग–अलग हो जाते हैं। यहाँ दो बातों की ओर ध्यान दिलाया जाना आवश्यक है, जिनके कारण भरत का दशरूपक विवेचन बहुत ही प्रासंगिक हो जाता है। पहली बात है नाटक की कथावस्तु का स्रोत। इस दिशा में भरत ने तीन स्रोत सुझाए हैं–

प्रख्यात–ऐसी कथावस्तु जो पहले से परिचित महाकाव्यों, पुराण, लोककथा अथवा इतिहास से ली गई हो।

उत्पाद्य–ऐसा कथानक जो पूरी तरह से नाटककार की अपनी कल्पना की उपज हो।

मिश्र– ऐसी कथा जो प्रख्यात और उत्पाद्य का मिश्रण हो अर्थात नाटककार मूल कथा को किसी जाने–पहचाने स्रोत से ले और फिर उसमें अपनी कल्पना से भी बहुत कुछ नया और अपना जोड़ दे।

इसे दोहराने की जरूरत नहीं कि आज के नाटककार के सामने भी यही तीन स्रोत होते हैं। नाटककार क्या, यह बात तो हर रचनाकार के विषय में कही जा सकती है।

दूसरी बात है नाटक की कथावस्तु के विकास से जुड़ा विवेचन। चौथी शताब्दी ई. पू. में यूनानी विद्वान और

दार्शनिक अरस्तू ने कथानक के विकास को लेकर तीन बिन्दुओं की चर्चा की थी। उनके अनुसार हर नाटक में आरम्भ, मध्य और अन्त–ये तीन बिन्दु अनिवार्य रूप से होने चाहिएँ तभी नाटक अपनी पूर्णता को प्राप्त करेगा। उन्नीसवीं शताब्दी तक पश्चिमी दुनिया में अरस्तू के यही तीन बिन्दु स्वीकृत रहे लेकिन बाद में जर्मन नाटककार फेदेतेव ने पाँच बिन्दुओं के सिद्धान्त से परिचय कराया। उनके अनुसार नाटक के कथानक का विकास तीन बिन्दुओं की बजाय पाँच बिन्दुओं के भीतर से होना चाहिए। ये पाँच बिन्दु हैं–इन्ट्रोडक्शन, ऐक्सपोजीशन, क्लाइमैक्स, ऐंटीक्लाईमैक्स और रिजोल्यूशन। देखकर आश्चर्य होता है कि जिन पाँच बिन्दुओं पर पश्चिम उन्नीसवीं शती में पहुँचा, वे नाट्यशास्त्र में पहले से मौजूद हैं। उदाहरण के लिए बीज (इन्ट्रोडक्शन) बिन्दु (ऐक्सपोजीशन) पताका (क्लाईमैक्स) प्रकरी (ऐंटीक्लाईमैक्स) और कार्य (रिजोल्यूशन)। ऐसा लगता है कि अंग्रेजी के पाँचों शब्द जैसे भरत द्वारा दिए गए पाँचों शब्दों के ही अनुवाद हैं। हम इस सम्भावना से इनकार भी नहीं कर सकते क्योंकि अठारहवीं–उन्नीसवीं शती में नाट्यशास्त्र पहले अंग्रेजी और फिर जर्मन भाषा में अनूदित हो चुका था। आज के रंगकर्मी के लिए यह सूचना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि नाट्य रचना का व्याकरण क्या होना चाहिए, इसका पूरा विश्लेषण सबसे पहले नाट्यशास्त्र में ही मिलता है। हम चाहें तो अपने रचना कर्म के लिए आज भी उससे लाभ उठा सकते हैं।

इससे भी बडी बात यह है कि भरत ने आज के नाटक की शिल्प–संरचना की दृष्टि से इतना पहले ही एक आधार भूमि के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत कर दिया है–यथा नाटकों का अंको में विभाजन, एक अंक में एक ही दिन की घटनाओं का समावेश, नाटक में संस्कृत और प्राकृत के रूप में पात्रानुकूल भाषाओं का प्रयोग, पात्रों द्वारा संवादों के बीच में स्वगत और प्रकट की उपस्थिति, जो कुछ मंच पर दिखाया नहीं जा सकता अथवा अंकों के बीच में घटित हो चुका हो, उसके विषय में दर्शकों को सूचित करने के लिए अलग–अलग तरह के सूच्य दृश्य, नाटक में आपसी वार्तालाप के लिए नित्य प्रति की गद्य भाषा और जब पात्र को अपने हृदय के आन्तरिक उद्गार व्यक्त करने हों तो पद्य का इस्तेमाल–हम किसी भी कोण से उपर्युक्त सामग्री का अध्ययन करें, वह आज के नाटकों में हू–ब–हू उपलब्ध है।

अभी तक के सम्पूर्ण अध्ययन से आज के रंगकर्मी को अपने समसामयिक रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में भरत के नाट्यशास्त्र की विषय वस्तु की सार्थकता और प्रासंगिकता का अहसास हो गया होगा। हम तो यहाँ तक कहना चाहेंगे कि भरत ने अभिनय और रंगमंच के दूसरे तत्वों को लेकर जितनी भी अवधारणाएँ प्रस्तुत की हैं, विश्व रंगमंच में अलग–अलग नाट्य प्रयोक्ताओं ने भी उससे मिलते–जुलते विचार प्रकट किए हैं।

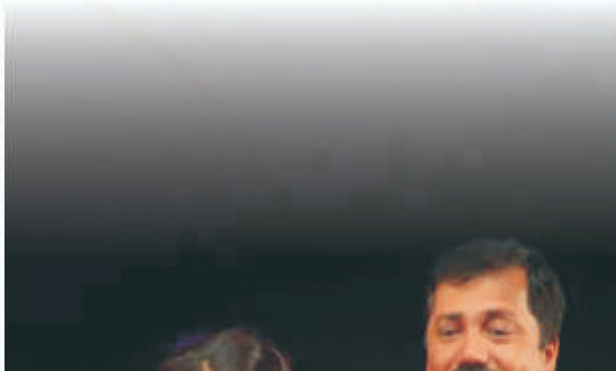

संपर्क सूत्रः प्रो. देवेन्द्र राज अंकुर, पूर्व निदेशक, एन.एस.डी.
E-mail: drankurnsd@gmail.com

स्मृति से पाण्डुलिपि तक: भारत की धरोहर और विश्व ज्ञान गुरु बनने का संकल्प

डॉ. रमेश चंद्र गौड़

भारत केवल एक भौगोलिक इकाई या राजनीतिक संरचना नहीं है यह एक सभ्यता है, जिसकी जड़ें हजारों वर्षों तक पीछे जाती हैं। यह वही भूमि है, जहाँ श्रुति और स्मृति की परम्परा ने ज्ञान का प्रवाह आरम्भ किया। ऋषि–मुनियों ने अपने अनुभव, साधना और दृष्ट ज्ञान को शिष्यों तक वाणी के माध्यम से पहुँचाया। 'यथा–ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः साक्षात् कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः।' धर्म का साक्षात्कार करने वाले वैदिक मन्त्रों के द्रष्टा ऋषि हुए हैं। यह मौखिक परम्परा सहस्राब्दियों तक चली और पीढ़ी दर पीढ़ी भारत की आत्मा को पोषित करती रही। किन्तु जैसे–जैसे समय बदला, ज्ञान को स्थायित्व और विस्तार की आवश्यकता हुई। तब लिपि और लेखन का उद्‌भव हुआ, और वहीं से शुरू हुई भारत की वह यात्रा जिसने उसे स्मृति से पाण्डुलिपि तक पहुँचाया। यही पाण्डुलिपियाँ आज हमारे सामने भारत की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में विद्यमान हैं।

लिपि की उत्पत्ति के विषय में प्रमुख सिद्धान्त है। ईश्वर प्रदत्त। सभी कार्य ईश्वर के द्वारा उत्पन्न हुए इसी आधार पर लिपि की उत्पत्ति भी ईश्वर द्वारा की गई मानी जाती है। अतः प्रत्येक देश के निवासी अपने किसी न किसी देवता को ही लिपि का जनक मानते हैं । भारत में ब्राह्मी लिपि के जनक ब्रह्मा को माना गया है। उपलब्ध पुरातात्त्विक प्रमाणों के आधार पर भारत देश की लिपियों का इतिहास यद्यपि सिन्धुघाटी की (मोहन–जोदड़ो=मृतकों का टीला एवं हड़प्पन) सभ्यता (ईसा पूर्व 3300 से 1300, कांस्य–युग) से शुरू होता है जिसका रहस्य अभी तक अनसुलझा है, तथापि ब्राह्मी लिपि ने भारत को साझा बौद्धिक पहचान दी। सम्राट अशोक के शिलालेख, गुप्तकालीन ब्राह्मी, कुटिला और नागरी लिपि – ये सब भारत के बौद्धिक इतिहास के साक्षी हैं।

लेखन– सामग्रियों में पत्र, ताळपत्र, भोजपत्र, सांचीपत्र (अगुरु), तुलापत्र, काष्ठफलक, वस्त्र, चर्म तथा अभिलेख आदि भी पाषाण, मृण्मयपात्र, ताम्रपत्र, स्वर्णपत्र, रजतपत्र एवं अन्य धातुओं पर लेखन की परम्परा मिलती है। ये केवल लिखने की सामग्री नहीं थे, बल्कि भारत की परिस्थितियों और रचनात्मकता के साक्ष्य हैं। भारत के प्रत्येक प्रदेश ने अपनी–अपनी लिपि विकसित की और इस तरह यहाँ ज्ञान का एक विराट सागर निर्मित हुआ। जिसे हम पाण्डुलिपियों के नाम से प्रतिपादित करते हैं।

पाण्डुलिपि दो शब्दों से मिलकर बना है। पाण्डु और लिपि। पाण्डु अर्थात् पुरानी, लिपि अर्थात् लेखन की परम्परा। पुरातन काल से प्रवाहमान लेखन की परम्परा। पाण्डु शब्द का एक अर्थ पीला पड़ जाना भी है। पाण्डु रोग में मनुष्य पीला पड़ जाता है अर्थात् उसके शरीर का रंग पीला हो जाता है। इसी प्रकार पुराने समय में लिखे हुए इन पाण्डुलिपि ग्रन्थों के पत्र भी 50–100 वर्ष तक रखे–रखे पीले पड़ जाते हैं। अतः इन हस्त–लिखित पोथिओं को ''पाण्डुलिपि'', ''पाण्डुग्रन्थ'' या, ''मातृका'' अथवा ''कोश'' या हस्तलिखित ग्रन्थ कहते हैं। "पाण्डुलिपि" शब्द केवल हस्तलिखित ग्रन्थ का द्योतक नहीं है, बल्कि यह भारत की बौद्धिक और सांस्कृतिक

चेतना का प्रतीक है। आज भारत में अनुमानित एक करोड़ पाण्डुलिपियाँ विद्यमान हैं, जो विभिन्न भाषाओं जैसे– संस्कृत, पालि, प्राकृत, बांग्ला, तमिल, हिन्दी इत्यादि तथा विभिन्न लिपियों जैसे शारदा, नेवारी, नन्दिनागरी, ग्रन्थ, मलयालम्, तमिल, तेलुगु आदि तथा विविध विषयों पर आधरित हैं यथा– वेद, वेदाङ्ग, धर्मशास्त्र, पुराण, इतिहास, दर्शन, आगम, तन्त्र, मन्त्र, स्तोत्र, यन्त्र, विज्ञान, ज्योतिष, गणित, भूगोल, कला, शिल्प, वास्तु, संगीत, नाटक, काव्य, व्याकरण, कोश, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र जैन एवं बौद्ध साहित्य आदि। इनकी भाषाई और विषयगत विविधता स्वयं इस देश की सांस्कृतिक विविधता का परिचय देती है। इन पाण्डुलिपियों के परिरक्षण करने की आवश्यकता को समझते हुए इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र ने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने का प्रयास किया है। संस्था ने पाण्डुलिपियों को माइक्रोफिल्मों पर उतारने हेतु प्रतिलिप्यांकन इकाई सन् 1989 में स्थापित की। जिसके पास प्रतिलिप्यांकित संसाधनों के समुचित संवर्धन, परिरक्षण एवं संरक्षण के प्रचुर साधन उपलब्ध हैं।

इस प्रकार की बहुमूल्य पाण्डुलिपियाँ हैं। इस पहल में संस्कृत की पाण्डुलिपियों को प्राथमिकता दी गई। इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र द्वारा उनकी पाण्डुलिपियों को माइक्रोफिल्मों पर उतारने का कार्य सितम्बर 1989 में शुरु किया था जिसके अन्तर्गत केन्द्र वर्तमान तक 52 सार्वजनिक एवं निजी संस्थानों तथा व्यक्तियों से प्राप्त लगभग तीन लाख पाण्डुलिपियों की 22 हजार माइक्रोफिल्म तैयार करने के साथ–साथ लगभग सभी का डिजिटल कार्य भी पूरा कर चुका है।

पर्यटन एवं संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा सन् 2003 में पाण्डुलिपियों के लिए राष्ट्रीय मिशन की स्थापना की गई थी। मिशन भारत की विशाल पाण्डुलिपि विरासत को पहचानने, दस्तावेजीकरण, संरक्षण एवं संवर्धन का कार्य करना चाहता है। जिसमें अभी तक लगभग 45 लाख पाण्डुलिपियों को चिह्नित करके मेटा डेटा तैयार किया गया है।

2025–26 के बजट भाषण में देश के यशस्वी प्रधान मंत्री श्रीमान् नरेन्द्र मोदी जी द्वारा ज्ञान–भारतम् मिशन की घोषणा करते हुए कहा गया कि भारत की पाण्डुलिपि धरोहर को संरक्षित करना और उसे आधुनिक तकनीक से जोड़ना नए भारत की पहचान बनेगा। भारत की विरासत केवल अतीत का गौरव नहीं, बल्कि भविष्य की शक्ति है। विरासत और विकास साथ–साथ चलेंगे, और ज्ञान–भारतम् मिशन भारत को एक बार फिर विश्व ज्ञान गुरु बनाने की दिशा में अग्रसर करेगा।

ज्ञान–भारतम् मिशन (2025) – यह एक ऐतिहासिक पहल है, जो प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की दूरदृष्टि का परिणाम है। इस ज्ञानभारतम् मिशन का पहला अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 11 से 13 सितंबर 2025 तक विज्ञान भवन, नई दिल्ली में आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम के समन्वयक के रूप में मुझे कार्य करने का सौभाग्य मिला। यह तीन दिवसीय ऐतिहासिक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, ज्ञान भारतम् मिशन के औपचारिक शुभारंभ का प्रतीक है। ज्ञानभारतम् अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की तैयारी के लिए आठ विशिष्ट कार्य समूहों का गठन किया गया था, जिसमें विभिन्न विद्वान, शोधकर्ता और सांस्कृतिक गणमान्य व्यक्ति सम्मिलित थे। हाइब्रिड मोड में आयोजित इस सम्मेलन में 1100 से अधिक युवा प्रतिभागियों और प्रतिनिधियों ने भाग लिया तथा 250 विद्वानों द्वारा विभिन्न विषयों पर शोधपूर्ण पत्र प्रस्तुत किया जो भविष्य के लिए मजबूत संरक्षकता को दर्शाता है।

पाण्डुलिपियों का संरक्षण और पुनरुद्धार, सर्वेक्षण और प्रलेखन मानक, डिजिटलीकरण उपकरण और प्लेटफार्म, हस्तलिखित पाठ पहचान और लिपि व्याख्या जैसे एआई–संचालित नवाचार, अनुवाद और प्रकाशन रूपरेखा, शिक्षा और संस्कृति के साथ एकीकरण, पाण्डुलिपि विज्ञान में क्षमता निर्माण, तथा कॉपीराइट और कानूनी मुद्दे इत्यादि इस सम्मेलन के चर्चा के विषय थे।

आज दुनिया स्वास्थ्य संबंधी चुनौतियों, पर्यावरणीय विघटन और आर्थिक अस्थिरता से जूझ रही है। ऐसे समय में भारत की पाण्डुलिपियाँ विश्व को नए समाधान दे सकती हैं। – आयुर्वेद और योग स्वास्थ्य क्षेत्र को नई दिशा दे सकते हैं। – शुल्बसूत्र और वैदिक गणित आधुनिक शिक्षा को सशक्त बना सकते हैं। – भरतमुनि का नाट्यशास्त्र विश्व रंगमंच को समृद्ध कर सकता है। – कौटिल्य का अर्थशास्त्र वैश्विक राजनीति और अर्थव्यवस्था को गहन समझ दे सकता है। विज्ञान के क्षेत्र में भी पाण्डुलिपियाँ नई क्रान्ति ला सकती हैं।

भारत के पास आज एक अनूठा अवसर है। जब भारत अपनी पाण्डुलिपियों को आधुनिक तकनीक, वैश्विक साझेदारी और शिक्षा–समाज से जोड़ेगा, तब यह केवल अपनी सांस्कृतिक पहचान को ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता को दिशा देने वाला–विश्व ज्ञान गुरु बनकर पुनः प्रतिष्ठित होगा। ज्ञान–भारतम् मिशन केवल एक सरकारी परियोजना नहीं है, बल्कि यह उस ऐतिहासिक यात्रा का पुनः स्मरण है, जिसने भारत को कभी विश्व गुरु बनाया था।

संपर्क सूत्रः डॉ. रमेश चंद्र गौड़,
निदेशक, आई.जी.एन.सी.ए. (कलानिधि डिविज़न)
E-mail: rcgaur66@gmail.com

भारतीय मानस: व्यावहारिकता का शाश्वत सूत्र

डॉ. कन्हैया झा

भारत केवल एक भौगोलिक सीमा या मानचित्र पर अंकित भूभाग नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत, अखंड और चेतन सत्ता है, जो सहस्राब्दियों के अनुभव, साधना, चिंतन और प्रयोगों से निर्मित हुई है। इस भूमि की विशेषता यह रही है कि यहाँ विचार केवल दार्शनिक विमर्श तक सीमित नहीं रहते, बल्कि वे जीवन के व्यवहार में उतरकर संस्कृति का रूप ले लेते हैं। यही कारण है कि भारतीय मानस न तो पूर्णतः आदर्शों के स्वप्नलोक में विचरता है और न ही केवल भौतिक यथार्थ के कठोर धरातल पर सीमित रहता है, बल्कि यह आदर्श और यथार्थ के मध्य एक अद्भुत संतुलन स्थापित करता है। एक ओर जहाँ ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का सार्वभौमिक उद्घोष समस्त विश्व को एक परिवार के रूप में देखने की दृष्टि प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर व्यक्ति–निर्माण, सामाजिक संगठन और जीवन–प्रबंधन की अत्यंत व्यावहारिक व्यवस्थाएँ भी समान रूप से विकसित की गई हैं। यही संतुलन भारतीय मानस को शाश्वत, सार्वभौमिक और कालजयी बनाता है।

भारतीय ग्रंथों में 'भारत' की जो परिभाषा दी गई है, वह इस चेतना को और स्पष्ट करती है। उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्। वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।। (विष्णु पुराण) जो भूमि समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में स्थित है, वहां राजा भरत की संतति (भारतीय) निवास करती है, वह भारतवर्ष कहलाती है। यह केवल भौगोलिक सूचना नहीं है, बल्कि इस भूमि के प्रति आध्यात्मिक आस्था का प्रतीक है। यहाँ की वायु, जल, मिट्टी और आकाश सभी में कुछ विशेष है, जिसने हमारे मानस को उदार, सहिष्णु और व्यावहारिक बनाया। संभवतः इसीलिए इस परिभाषा को भारत के नए संसद भवन में भी प्रदर्शित किया गया है। यही भावना अथर्ववेद के वाक्य में अधिक गहराई से अभिव्यक्त है :– माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः (अथर्ववेद 12.1.12) 'पृथ्वी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।' जब कोई व्यक्ति यह अनुभव कर लेता है कि सम्पूर्ण भूमि उसकी माता है, तो उसका कर्तव्य स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है, उसे केवल व्यक्तिगत सीमा तक नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व के कल्याण के लिए कार्य विस्तारित करना है। यही भारतीय मानस का मूल मंत्र है, कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अर्थात सम्पूर्ण विश्व को कल्याणकारी बनाएँ।

इस समग्र व्यवस्था का केंद्र 'धर्म' है, किन्तु यहाँ धर्म का अर्थ कोई संकीर्ण मत, रिलिजन या पंथ नहीं, बल्कि उस शक्ति से है जो जीवन और समाज को धारण करती है। धर्म की व्युत्पत्ति 'धारयति इति धर्मः' से है, जो धारण करता है, जो संसार को संभाले रखता है, वह धर्म है। धारणा/धर्ममित्याहः धर्मो धारयते प्रजाः (महाभारत) जो प्रजा को धारण करता है, वह धर्म है। दूसरे शब्दों में, धर्म का अर्थ है –कर्तव्य, सत्य, अहिंसा, दया, और सामाजिक व्यवस्था। जब हम कहते हैं कि 'भारतीय

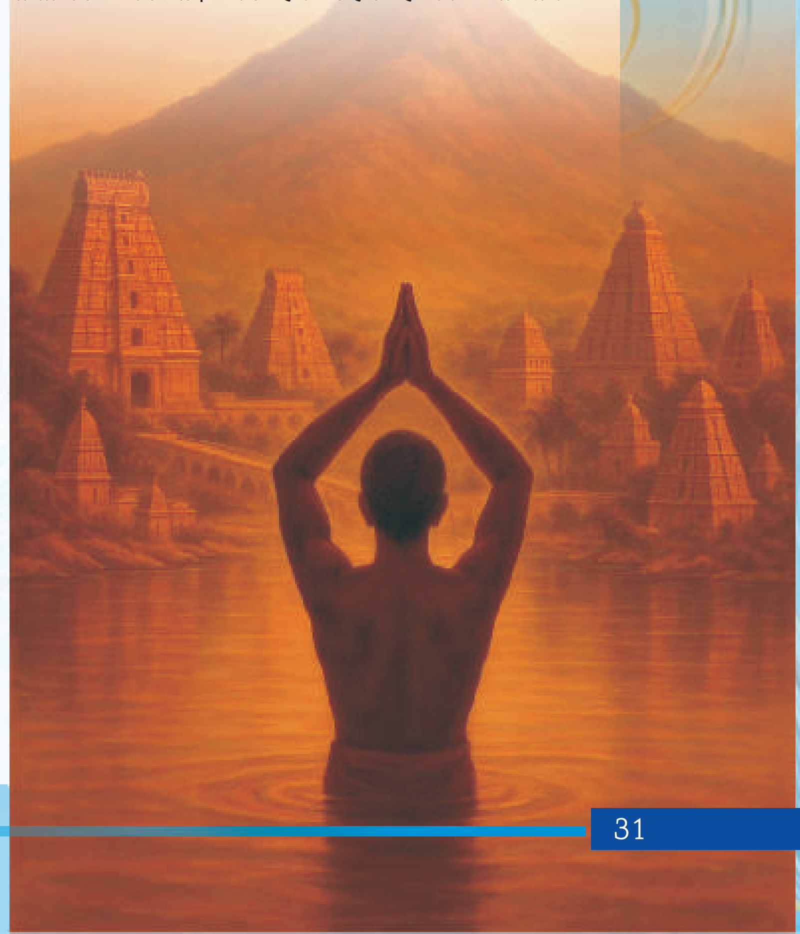

मानस व्यावहारिक है', तो उसका आशय है कि वह धर्म को जीवन से अलग नहीं करता। धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः (मनुस्मृति 8.15) धर्म का नाश करने वाला स्वयं नष्ट होता है, और धर्म की रक्षा करने वाले की रक्षा धर्म करता है। यह एक व्यावहारिक नियम है, इसे ही लोक भाषा में कहा जाता है—जैसी करनी वैसी भरनी।

भारतीय जीवन पद्धति की शुरुआत ही संस्कारों से होती है, जहाँ प्रातः कालीन स्मरण ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः।। (पद्मपुराण) से किया जाता है। यह दर्शाता है कि जीवन की शुद्धता बाहरी परिस्थितियों से अधिक अन्तःकरण की स्थिति पर निर्भर करती है। इस मंत्र का अर्थ अत्यंत व्यावहारिक है, चाहे आप बाहर से अपवित्र हों या पवित्र, चाहे किसी भी अवस्था में हों, यदि आप परमात्मा का स्मरण करते हैं, तो आप भीतर और बाहर दोनों तरह से शुद्ध हो जाते हैं। शुद्धि और शुचिता का प्रारंभ स्मरण से होता है, यह मानसिक शुद्धि की पहली सीढ़ी है। इस मानसिक शुद्धि के पश्चात् आयुर्वेदिक दिनचर्या, योग, प्राणायाम, अध्ययन और कर्म ये सभी मिलकर जीवन को एक संतुलित और समग्र रूप प्रदान करते हैं। आयुर्वेद कहता है कि स्वस्थ शरीर में ही संस्कारित चिंतन संभव है। यहाँ शरीर और आत्मा का कोई विरोध नहीं है, बल्कि दोनों समन्वयक हैं, क्योंकि भारतीय मानस यह मानता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ चिंतन संभव है और सही चिंतन ही सही कर्म का मार्ग प्रशस्त करता है।

रामायण इस भारतीय मानस का सजीव प्रतिबिंब है, जहाँ आदर्श केवल उपदेश नहीं, बल्कि जीवन में जीने योग्य आचरण के रूप में प्रस्तुत होते हैं। श्रीराम का चरित्र पितृभक्ति, सत्यनिष्ठा, करुणा, धैर्य और कर्तव्यपरायणता का ऐसा समन्वय है, जो किसी भी आदर्श व्यक्ति के व्यावहारिक गुणों को परिभाषित करता है। हनुमान की निःस्वार्थ सेवा, सीता की अडिग आस्था और रावण के अहंकार का पतन—ये सभी प्रसंग यह सिखाते हैं कि जीवन की विविध परिस्थितियों में धर्म को कैसे जीवित रखा जाए। इस प्रकार रामायण केवल कथा नहीं, बल्कि जीवन जीने की एक सुसंगत नियमावली है, जो भारतीय मानस को दिशा प्रदान करती है। पितृव्रतः सत्यव्रतः शुचिर्वा मृदुदण्डवान्। अनसूयुः स्मृतिमान् दक्षो दयावान् भूतवत्सलः।। (वाल्मीकि रामायण) श्रीराम पितृव्रत (पिता के प्रति समर्पित), सत्यव्रत (सत्य के प्रति प्रतिबद्ध), शुद्ध, कोमल दण्ड देने वाले, ईर्ष्या रहित, स्मृतिशील, दक्ष और दयालु हैं। क्या यह किसी आदर्श व्यक्ति के व्यावहारिक

गुणों की सूची नहीं है? जीवन में जब तक धर्म बचा रहेगा तब तक भारतीय मानस का अविरल प्रवाह अनवरत गतिमान होता रहेगा।

यदि व्यावहारिक दर्शन की दृष्टि से देखा जाए, तो श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय चिंतन का सर्वोच्च प्रतिपादन है। यह केवल युद्ध–क्षेत्र का संवाद नहीं, बल्कि प्रत्येक मनुष्य के अंतर्युद्ध का समाधान है। प्रत्येक मनुष्य को जीवन में समय–समय पर विभिन्न प्रकार के अंर्तद्वंदों का सामना करना होता है, जहाँ वह स्वयं को किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति में पाता है, ऐसी परिस्थितियों में गीता मनुष्य के जीवन का भावी मार्ग प्रशस्त करती है। कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ (गीता 2.47) तुम्हें केवल कर्म करने का अधिकार है, फलों पर कभी नहीं। यह सूत्र आज के प्रतिस्पर्धी युग में सबसे बड़ा तनाव–नाशक है। फल की चिंता छोड़ो, बस कर्तव्यपूर्वक कर्म करो। दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः। वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ (गीता 2.56) जो दुखों में व्याकुल नहीं होता और सुखों में आसक्त नहीं होता, वह स्थितप्रज्ञ है। यही भारतीय मानस का संकट–प्रबंधन का व्यावहारिक मॉडल है। सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ (गीता 2.38) सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय– पराजय को समान करके कर्म करो। यही समत्व योग है।

भारतीय चिंतन की विशेषता है कि यह केवल आध्यात्मिक ऊँचाइयों तक सीमित नहीं रहता है, बल्कि सामाजिक और व्यावहारिक जीवन के लिए स्पष्ट मार्गदर्शन देता है। उपनिषद् कहते हैं एकोऽहं बहु स्याम् (छान्दोग्य उपनिषद्) एक मैं बहुत हो जाऊँ। यह वह भावना है जो व्यष्टि से समष्टि तक जाने का मार्ग दिखाती है। चाणक्य का सिद्धांत त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्। ग्रामं जनपदस्यार्थे कुल आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।। सिखाता है कि बड़े हित के लिए छोटा त्याग करना पड़ता है। यही तो प्राथमिकता तय करने की कला है। आज के प्रबंधन विशेषज्ञ भी यही सिखाते हैं। पंचतंत्र की कहानियाँ तो स्वयं में सम्पूर्ण व्यावहारिक शिक्षा हैं। मित्रता, शत्रुता, कूटनीति, और बुद्धि का उपयोग से जुड़ी अनेक कहानियां हमें सामाजिक व्यवहार के लिए तैयार करती हैं।

भारतीय संयुक्त परिवार इस समग्र दर्शन का प्रत्यक्ष उदाहरण है। संयुक्त परिवार की परंपरा स्वयं में एक व्यावहारिक व्यवस्था है जहाँ, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुर्थ पुरुषार्थ से जीवन चक्र चलता है। परिवार में रहकर सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखते हुए अर्थ का सृजन करना होता है, जीवन के लिए आवश्यक संसाधनों का संचय करना होता है, किन्तु यह अर्थ का उपार्जन न्यायोचित हो यह आवश्यक होता है।

जीवन को आगे बढ़ाने के लिए प्रेम, सुख, मानसिक और भावनात्मक संतुष्टि आवश्यक है। खुशहाल जीवन के लिए संगीत, कला और सौन्दर्य जीवन का अभिन्न अंग बनते हैं लेकिन ये सभी क्रियाकलाप धर्म की मर्यादाओं में किये जाते हैं। जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करना है। मोक्ष क्रिया की समाप्ति का नाम नहीं है बल्कि यह व्यक्तिगत इच्छाओं से ऊपर समाज के निर्णय को अपना निर्णय मानने का नाम है, समाज के निर्णय में अपनी भूमिका सुनिश्चित करने का नाम मोक्ष है। इसीलिए भारतीय संयुक्त परिवारों में संसाधनों का बंटवारा, भावनात्मक समर्थन और सामूहिक निर्णय पर आधारित होते है।

भारत की उदारता और समावेशिता को इस श्लोक से समझा जा सकता है, अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।। (महोपनिषद्) यह अपना है, यह पराया है यह गणना तो संकीर्ण मन वाले करते हैं। उदार चरित्र वालों के लिए तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही परिवार है। यही सहिष्णुता और समायोजन की क्षमता हमारी पहचान है। इसलिए भारतीय मानस कभी भी संकीर्ण नहीं होता वह सदैव सबका साथ सबका विकास तथा सबका विश्वास की भावना पर कार्य करता है। यही कारण है भारतीय समाज ने एक ब्रह्म को विविध तरीके से प्रदर्शित किया, जिसे विविधता कहा जाता है। एक भाव को अनेक विधियों से प्रदर्शित करने और जीने की कला भारतीय चिंतन में ही हो सकते हैं।

मनुष्य का सबसे सच्चा साथी उसका स्वयं का शरीर और मन होता है। उसे भारतीय मनीषियों ने संतुलित रखने के लिए लिए बहुत से उपाय बताएं जैसे योग, प्राणायाम, ध्यान और आयुर्वेद–भारतीय मानस इन सभी का अपने जीवन में पालन करता है। आधुनिक युग में जब विश्व मानसिक तनाव के घोर संकट से गुजर रहा है तब भारतीय दर्शन और महत्वपूर्ण हो जाता है, इसका समाधान केवल भारतीय विधाओं में ही निहित है, इसी कारण आज सम्पूर्ण विश्व योग, ध्यान और प्राणायाम को अपना रहा है। पतंजलि योगसूत्र का पहला सूत्र ही बताता है, योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (योगसूत्र 1.2) योग का अर्थ है चित्त की वृत्तियों का निरोध। भारत में योग की शिक्षा तथा अभ्यास प्राचीन है किन्तु जब आधुनिक युग में एंग्जायटी, बर्नआउट और डिप्रेशन बढ़ रहे हैं, तब योग एक व्यावहारिक समाधान के रूप में उभरा है।

'कर्म' और 'भगवान की इच्छा' का संतुलन हमें सिखाता है कि प्रयास जारी रखें, परंतु जो नियंत्रण से परे है, उसे स्वीकार करें। भारतीय मानस की सबसे बड़ी विशेषता है बदलाव को अपनाना, पर मूल्यों को नहीं छोड़ना। आज हम पश्चिमी उपभोगवाद को अपना रहे हैं, पर दीपावली, होली, रक्षाबंधन, करवाचौथ – ये त्योहार और रिश्ते आज भी उतने ही जीवंत हैं। यही हमारा लचीलापन है।

प्राकृतिक संसाधनों का असीमित दोहन तथा वैश्विक युद्ध ने दुनिया के पर्यावरण के चक्र को दूषित कर दिया है ऐसे में दुनिया भर के विद्वानों के मन में पर्यावरण की सुरक्षा की चिंता जायज है। इन चिंताओं के दौर में भारतीय मानस पर्यावरण के प्रति कितना संवेदनशील है, यह ईशावास्योपनिषद के प्रथम श्लोक से स्पष्ट होता है ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।। (ईशोपनिषद् १) सम्पूर्ण जगत ईश्वर से आवृत्त है। इसलिए त्याग के भाव से भोग करो, किसी के धन का लोभ मत करो। यही पर्यावरणीय चेतना और अपरिग्रह का व्यावहारिक मार्ग है। आज जब विश्व जलवायु परिवर्तन से जूझ रहा है, यह श्लोक और भी प्रासंगिक हो जाता है।

भारतीय मानस की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाता है। आत्मनिर्भर मनुष्य, समाज और राष्ट्र का न केवल आत्मविश्वास बढ़ाता है बल्कि उसे विपरीत परिस्थितियों में संकटों का सामना करने के लिए मानसिक सुदृढ़ता भी प्रदान करता है। आत्मनिर्भर व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं होता है। वह अपने जीवन की दिशा स्वयं तय करता है और अपने बारे में लिए गए जीवन के सटीक निर्णयों के क्रियान्वयन के लिए स्वतंत्र भी होता है। आत्म निर्भरता न केवल आत्मोन्नति के लिए आवश्यक है अपितु यह मनुष्य को सुरक्षा का कवच भी प्रदान करती है। उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।। (गीता 6.5) स्वयं द्वारा ही अपना उद्धार करो, अपना पतन मत करो। तुम स्वयं अपने मित्र हो, और स्वयं ही शत्रु। यह श्लोक व्यक्ति को आत्म–प्रेरणा और आत्म–अनुशासन का पाठ पढ़ाता है। कोई बाहरी रक्षक नहीं आएगा, तुम्हें स्वयं उठना होगा।

भारतीय मानस की सबसे बड़ी शक्ति उसका संतुलन और लचीलापन है, वह काल–सुसंगत को साथ रखता है और काल–बाह्य चीजों में बदलाव के लिए सदैव तत्पर रहता है। जब हम अपने मूल्यों को बनाए रखते हुए आधुनिक चुनौतियों का सामना करते हैं तब भारतीय मानस व्यक्ति और विश्व दोनों के लिए एक प्रेरणादायक मॉडल बनता है। भारतीय मानस में 'धर्म' वैश्विक कल्याण की भावना है, 'कर्म' निरंतर प्रयास है, और 'समता' जीवन की चुनौतियों से निपटने का व्यावहारिक मार्ग है। यही वह स्वरूप है जो इसे अनोखा, सशक्त और शाश्वत बनाता है। इस विचार को लेकर भारतीय देश या विदेश किसी भी कोने में रहते हैं उनके मानस का मूल–तत्व समान होता है।।

सम्पर्क सूत्र : डॉ. कन्हैया झा,
निजी सचिव (अध्यक्ष कार्यालय, एन.एस.डी.)
E-mail: jhadrkanhaiya@gmail.com

स्मृतियों का सफर

श्री मनोज रमेला

पंजाब राज्य का जिला होशियारपुर का एक छोटा सा शहर है, माहिलपुर। चारों ओर जमीन दोनों ओर एक चौड़ी सड़क बस यही है वह छोटा सा शहर। इसमें सड़क के किनारे एक लम्बा चौड़ा चार दीवारी का पक्का मकान बना हुआ था जिसमें रहते थे महेंद्र सिंह। उनका एक ही लड़का था जो एक स्कूल का अध्यापक था। बस हमेशा अपने आप में खोया–खोया रहता मानों उसे किसी की चिंता है। पिता हमेशा उससे बात करने के लिए अपने पास बुलाते तो वह कोई न कोई बहाना बनाकर निकल जाता। इस तरह पिता ने सोचा क्यों न इसका विवाह कर दिया जाए कम से कम कुछ मन बहले। हम अकेले कब तक ऐसे ही रहेंगे। दो तीन महीने की दौड़–धूप के बाद एक लड़की से बात पक्की करने से पहले उन्होंने अपने बेटे अमरजीत से इसके लिए बात की तब वह राजी हो गया। लड़की भी एक स्कूल में अध्यापिका थी। बस दोनो को एक दिन आमने–सामने करा दिया। अमरजीत ने अपने पिता से कहा कि मैं लड़की से कुछ पूछना चाहता हूँ। पिता ने कहा ठीक है जो कुछ पूछना है पूछ लो फिर मत कहना। अमरजीत ने लड़की से कुछ डरकर कहा जी आपदा ना की है?

मेरा ना है सिमरन कौर। अमरजीत नाम सुनकर इतना खुश नहीं हुआ जितना उसके कहने के अंदाज को देखकर। सिमरन जी असी तो सारी जिंदगी साथ–साथ कटनी है अगर तुआड़े मन बिच कोई सवाल है तो बिना किसी डर दे पूछ लओं, अमरजीत ने कहा। नहीं जी। सिमरन ने शर्माते हुए कहा। क्या मैं पसंद होउँगा अमरजीत ने पूछा। सुनकर सिमरन ने कोई जवाब नहीं दिया। पर सिर झुकाकर इकरार कर दिया। मैं तो आप को पसंद करता हूँ। जानता हूं कि आप ये बात अपने मुँह से नहीं कह सकती इसलिए अब अगर कोई और सवाल है तो आप जान सकती हो, अमरजीत ने कहा। सिमरन ने कभी ऐसा सोचा भी नहीं था कि एकदम इस तरह से सवालों का जवाब देना पड़ेगा। उसने दबी हुई आवाज में कहा मुझे कुछ नहीं जानना, कहकर उसने अपना मुँह दूसरी तरफ कर लिया। अमरजीत को जवाब का जैसे पहले से ही पता था। उसने पिता से कहा ठीक है, लड़की मुझे पसंद है। इस प्रकार लड़की और लड़के के रिश्तेदारों ने आपस में बैठ कर उनकी कुडमाई पक्की कर दी। मई के अंत में कुडमाई और विवाह तय कर दिया।

फरवरी का महीना था खेतों में गेहूं की लम्बी–लम्बी बालीयाँ आ गईं थीं। अमरजीत सुबह जल्दी उठकर अपने खेतों में चला जाता। वहीं से नहा धोकर आता और नाश्ता करके स्कूल चला जाता। एक दिन अचानक सड़क के किनारे उसे सिमरन खड़ी मिल गई। अमरजीत ने स्कूटर उसके पास ले जाकर रोक दिया। सिमरन हैरान सी होकर देखने लगी। कि हो गया? अमरजीत ने सिमरन से पूछा। सैकल खराब हो गयी, कहकर सिमरन चुप हो गई। 'चलो कोई गल नी। स्कूल दी छुट्टी ते हो गई चलके दकान तो ठीक करा लईये'। अमरजीत ने अपना स्कूटर एक तरफ खड़ा कर दिया और थोड़ी दूर दुकान पर साईकिल लेकर चल पड़े। दोनों चुपचाप चल रहे थे। मन में इतनी चाहत थी कि बात करें लेकिन पहल कौन करे? अमरजीत ने सिमरन की तरफ देखकर कहा, क्या मेरी याद तुम्हें आती है? सुनकर सिमरन का चेहरा लाल हो गया कि क्या जवाब दूँ। इसी कशमकश

में वह पड़ी रही। तभी बात काटकर अमरजीत ने कहा दुकान आ गई। साईकिल को दुकान पर छोड़ अमरजीत ने कहा अभी थोड़ा टाईम लगेगा चलो तब तक दुकान से चाय पीते है। सिमरन बिना कोई जवाब दिए साथ–साथ चल पड़ी। दुकान पर दोनो आमने–सामने बैठकर चाय पीने लगे। सिमरन ने कहा आज ठण्ड कम है नहीं तो कपड़ो में भी ठण्ड लग रही थी कल। उसकी आँखे नीचे की ओर देख रही थी लेकिन ध्यान अमरजीत की तरफ था। जवाब से पहले ही उसने एक बार मुँह ऊपर की ओर उठाकर देखा, अमरजीत से आँखें मिली तो लगा कि सब कुछ थम गया है। दोनों आँखों के रास्ते एक दूसरे में समा गये। अचानक सिमरन ने बहाना बनाकर कहा कि मैं तो भूल गई, आज घर जल्दी जाना था, मामा जी आये होंगे। मेरा इंतजार कर रहे होंगे। अमरजीत सिमरन के आगे से हटना नहीं चाहता था। रोककर कहा "अब तक तुम कहाँ थी? क्या मुझ पर अभी और जुल्म ढाओगी?" "ऐसे कैसे तुम जा रही हो?" सिमरन ने शर्माकर कहा कुछ दिनों की बात और है। तब जो कहोगे मैं सुन लूंगी लेकिन देर नहीं करना चाहती। "चलो फिर कोई बात नहीं। साइकिल आपका ठीक हो गया होगा। कहो तो मैं स्कूटर पर छोड़ दूँ।" अमरजीत ने कहा। "नहीं, मैं साइकिल से ही चली जाऊंगी।" कहकर सिमरन तेजी से दुकान से बाहर निकल गई। साइकिल तैयार हो गई थी। दुकान से साइकिल लेकर सिमरन जल्दी से चल पड़ी। अमरजीत अपने मन की बात मन में ही रखकर रह गया। घर आकर वह सो गया लेकिन नींद कहाँ। बार–बार सिमरन का मुखड़ा आँखों के आगे आ रहा था। मन में कई सवाल भी उठ रहे थे। जैसे तैसे महीने पार हुए। विवाह में केवल दो दिन रह गये थे। इसी तरह अमरजीत और सिमरन की कुल तीन बार मुलाकात हुई लेकिन वह मन की बात न कह सका। विवाह दिन का था। गर्मी भी पड़ने लग गई थी। हवेली में चारों ओर रिश्तेदारों का आना जाना हुआ था। कोई पगड़ी बांध रहा था, कोई अपनी दाढ़ी में कंघी कर रहा था, कोई कपड़े बदल रहा था, ढोल की आवाज गूंज रही थी। औरतें कमरों में शीशे के आगे डटकर खड़ी थीं। अमरजीत अकेला कमरे में एक कोने में बैठा सोच रहा है न जाने उसका मन क्यों बुझा सा है। कोई शादी की खुशी नहीं चुपचाप बैठ कमरे की दीवारों को देख रहा था। तभी उसके दोस्त ने आकर कहा "चल यार असी तेरा इंतजार कर रहे हा होर तू इस तरह बैठा हाँ? चल तैयार हो।" अमरजीत ने शांत स्वर में कहा कि मन में कोई खुशी नहीं है सब

ठीक होना चाहिए, दोस्त ने कहा "ओ कोई बात नहीं। रब ठीक करेगा।" अमरजीत तैयार होने लगा किसी तरह अपने आपको तैयार किया और कमरे से बाहर निकल पड़ा। सब लोग उसी को देखने लगे। "चलो चलो चलो मुंडा आ गया। सगन तैयार करो और कार वाले को कहो गाड़ी मोड़ पर खड़ी कर दे।" पिता आज बहुत खुश लग रहे थे। माँ भी लाल को देख खुश हो रही थी, चलो घर में रौनक तो होगी। सुनसान हवेली में मन नहीं लगता था। सब कुछ तय है लेकिन फिर भी देर हो ही जाती है। पूरी तैयारी के साथ बारात चल पड़ी। दुल्हन के गांव के बाहर ही उसके रिश्तेदारों ने स्वागत किया और बारातघर में सबको ठहरा कर नाश्ता करवाना शुरू कर दिया। सब कुछ तैयार था। सभी अपने सजने–धजने में मस्त थे। अमरजीत को भूख न प्यास बस ऊपरी तौर पर हंस रहा था। कुछ लड़की की बहनें अपने जीजा से मिलने के लिए आई थीं। कोई कुछ मांगे कोई कुछ। अंत में महेन्द्र सिंह ने आकर उनको चाँदी की अंगूठियाँ और पाँच सौ रुपये दिए। "चलो इनसे पीछा तो छूटा" मन में अमरजीत ने कहा, कहकर वह चारपाई पर लेट गया। सब लोग उसी को घेरे हुए थे। वह न चाहकर भी बोल रहा था। दोपहर हो गई खाने का न्यौता आ गया। बैंड वाले तैयार होकर बैंड बजाने लगे और कुछ लोग भंगड़ा करने लगे। ऐसे ही सब हंसी खुशी लड़की के घर पहुंचे। शादी की शुरुआती रस्म हुई। चारों तरफ ढोल की गूंज। ग्रंथी का पाठ कर भी अरदास की और बारात अंदर पंडाल में चली गई सभी लोग खाने के लिए चल पड़े। अमरजीत अपनी तलवार सम्भाले चुपचाप अपने

दोस्त के साथ चल रहा था। उसके लिए एक अलग टेबल लग गई थी। कुछ लोगों ने उसके लिए कुर्सी लगा दी। कुछ प्लेट में खाना डालने लगे। जैसे–तैसे अमरजीत ने खाना खाया और थोड़ी देर बाद सभी बाराती बारातघर की ओर चले गए। अमरजीत और उसके माता–पिता तथा कुछ रिश्तेदार वहीं रुक गए। गुरु ग्रंथसाहब के आगे दूल्हे और दुल्हन को बैठा दिया गया। उसके बाद दोनों ने माथा टेककर सबसे आशीर्वाद लिया। लड़की वालों की तरफ से लगभग सभी घरवालों के विदाई को देखकर आँखों में आँसू आ गये। सभी लड़की के पीछे–पीछे गाँव के किनारे तक आ गए। अमरजीत सब कुछ देखकर मन ही मन उदास सा होकर चल रहा था। उससे यह सब देखा नहीं जा रहा था। किसी तरह कार तक पहुँचकर बैठकर थोड़ा राहत की साँस ली। सिमरन का रो–रोकर बुरा हाल था आखिर इतने सालों तक अपने माता–पिता के साथ रही थी बिछड़ने का दुख तो होगा ही। अमरजीत मन में सोचने लगा "न तो अब मैं इसको चुपकरा सकता हूँ, न कोई दिलासा दे सकता हूँ। बस इसे अपने आप ही मन को थामना होगा।" कार तेजी से चलने लगी। साथ बैठी सिमरन पीछे मुड़–मुड़कर देख रही थी कि काश घर ही वापस चली जाऊँ पर अब तो मजबूरी है कि सब कुछ चाहकर भी जाना पड़ेगा। कुछ दूरी तय होने पर वह चुपचाप सुबकते हुए घूंघट कर बैठ गई। "शायद उसका बस चलता तो जब हम पहले मिले थे तो उस दिन भी वह घूंघट करती लेकिन अब उसकी आँखों में एक अजीब सी इज्जत वाली शर्म थी। उसी पर तो मैं मरा था।" बस हम दोनों खामोश बैठे थे जानकर भी अजनबी। घर आ गया। माँ और पिताजी पहले ही पहुँच गये थे। शाम के

पाँच बज चुके थे। हमारे पहुँचते ही बैण्डवाले मस्तानी धुन में बजाने लगे। कई रिश्तेदार नाच गाने में मस्त हो गये। हवेली का नजारा ही अलग था। सब जगह भीड़ भाड़। सब लोग हमें घरे हुए मकान की चौखट पर ले जाकर रुक गए। माँ ने चौखट के दोनों ओर सरसों का थोड़ा–थोड़ा तेल डाला और सिमरन ने माँ के पैर छूऐ और अंदर घर में कदम रखा सब लोग सिमरन को ही देख रहे थे। औरतें कह रही थीं। "पम्में कुडी बड़ी सोठी है नज़र न लग जाए।" मैं मन में गर्व महसूस कर रहा था। हम दोनों को मेरे कमरे में बैठा दिया गया। नीचे जमीन पर गद्दे बिछे हुए थे। बैठते ही अमरजीत को लगा कि ये सारे रिश्तेदार यहाँ से बाहर चले जाएं लेकिन वो तो जाने का नाम ही नहीं ले रहे थे। अमरजीत को मानो पेच लग गए हो वह सिमरन से अलग होकर बैठना ही नहीं चाह रहा था। सिमरन की भाभी बड़ी हंसमुख थी उसने उसका मन बहला दिया। कुछ मनचले लड़के भाभी को देखने के लिए किसी ने किसी बहाने अंदर आ रहे थे। सुखबीर अमरजीत का दोस्त चाय और पकौडे लाया और दोनो के सामने बैठ गया बोला भाभी जी चाय पी लो उसकी बोलने की अदा पर मुझे न जाने क्यों गुस्सा आ रहा था। सिमरन ने चाय का गिलास लिया और मेरे हाथ में पकड़ा दिया एक उसने अपने लिए लिया और भाभी को कहा की आप भी चाय पी लो। सुखवीर ने कहा भाभी जी एक बात बताओ आप को मीठा पंसद है या नमकीन। उसके इस सवाल को सुनकर अमरजीत अंदर हे अंदर जल उठा लेकिन अब वह अपने दोस्त को कुछ कह भी नहीं सकता था। सिमरन ने सुखवीर की आँखो में आँखे डालकर कुछ इस कदर जवाब दिया कि अमरजीत का दिल धक सा रह गया। उसकी इस तरह

की हरकत पर अमरजीत को मन में इतनी शर्म महसूस हुई कि एक बार को उसको लगा कि इसे अभी कह दूँ कि मुझे नहीं रहना तेरे साथ लेकिन मन को शांत करना पड़ा। अगर ऐसा था तो मुझे पंसद ही क्यों किया? मैंने पहले ही पूछा था। फिर सोचा चलो हो सकता है कि मुझे समझने मे भूल हो गई हो। लेकिन इस हरकत ने अमरजीत को सर्तक कर दिया। पहले ही दिन इस तरह का रूप देखकर मन में शक खड़ा कर दिया यही से ही गृहस्थी की नींव डलती है। जैसी नींव होगी, वैसा ही आगे मकान बनेगा। किसी तरह से सब रिश्तेदार कमरे से धीरे–धीरे चले गए। तीनों जन रह गए। कमरे में एकदम सन्नाटा सा छा गया। अमरजीत इधर–उधर देखने लगा रात होने लगी। बाहर से ढोल ओर शोर शराबा, हंसी की मिली–जुली आवाजें आ रही थीं। तभी माँ ने आकर कहा, ''बेटा खाना खा लो, मक्के की रोटी और साग मैने स्पेशल बनवाया है।'' कहकर माँ चली गई। ''चलो खाना खा लो, नहीं तो ठण्डा हो जाऐगा वैसे भी ठण्ड और बढ़ने लग गई है कहकर भाभी चुप हो गई। सभी चुपचाप खाना–खाने लग गए। सिमरन ने थोड़ा ही खाया फिर वह खाकर उठ खड़ी हुई, ''मुझे हाथ धोने है।'' रूको माँ के साथ चले जाना अमरजीत ने कहा। माँ ने बड़े चाव के सिमरन के पीठ पर हाथ रखकर कहा ''चल मेरे साथ चल'', दोनों बाहर निकल पड़े। अमरजीत अपना खाना खाता रहा। खाना खाकर उसने हाथ धोये और रजाई लेकर कमरे के दूसरे कोने में बैठ गया। सिमरन आ गई और भाभी के पास ही बैठ गई। भाभी के पास बैठकर उसने उसके कान के धीरे से कहा, सुनकर उसने सिमरन को छुआ तो वह हैरान हो गई। ''इतना तेज बुखार!'' अमरजीत ने सुनकर कहा, ''चलो डाक्टर के पास दिखा देता हूँ।, डॉक्टर ने कहा कि इसको खसरा हो गया है, दो–तीन रोज इनको आराम करवा दो और जितना परहेज हो उतना ही अच्छा है। अमरजीत डाक्टर की बात को ध्यान से सुनता रहा। चलो कोई बात नहीं जो हो गया सो हो गया आगे अपने आप को सम्भालो अमरजीत ने कहा। घर आकर सिमरन रोने लगी। उसकी भाभी ने उसे समझाया लेकिन वह है कि चुप ही नहीं हो रही। अमरजीत ने अपना कोट उतार कर कहा वक्त रहते ही पता चल गया नहीं तो और भी ज्यादा बढ़ जाता, इसमें तुम्हारी कोई गलती थोड़े ही है न। जो हुआ अच्छा ही हुआ। अब अपना ठीक से ख़्याल रखो मुश्किल समय है कट जाएगा घबराने की कोई बात नहीं है हिम्मत से काम लो मैं हूँ ना। तुम्हारे पास कोई चीज की जरूरत हो तो बोलो? सिमरन ने कुछ नहीं कहा, वह अपने आप को कोस रही थी कि ये क्या हो गया। आज ही होना था और दो दिन निकल जाते। ये क्या कहेंगे पता नहीं कैसी मनहूस हूँ, जो आज के दिन ही बीमार हो गई। अमरजीत उसके चेहरे के भावों को देखकर अंदाजा लगा रहा था पर अब उससे ज्यादा वह और कुछ कर भी नहीं सकता, जैसे–तैसे रात कटी। सुबह फेरा डालने जाना है की खुशी में सिमरन जल्दी ही तैयार हो गई। अमरजीत लम्बा–चौड़ा जवान गोरा चिट्टा सिमरन लम्बी पतली छरहरी। जोड़ी दोनों की अच्छी थी। अमरजीत ने अपना स्कूटर निकाला और स्टार्ट किया फिर उसने कहा कि चलो हम तीनों चलते

हैं। सिमरन ने कहा नहीं जी हम तीन नहीं जायेंगे। आप कार कर लो। मायके वाले कहेंगे कि इतने पैसे वाला हो के कार नी कर सका। अच्छा मैं कार लाता हूँ। कार आ गई। तीनों कार में बैठ गए। आज उसके चेहरे पर कुछ मुस्कान है चलो ससुराल वाले ये तो नहीं कहेंगे कि लड़की को पता नहीं कैसे रखा है। कार में मामी ने कहा कुछ बोलते क्यों नहीं क्या मौन व्रत है? नहीं रात नींद नहीं आई बार–बार उठ कर देखता रहा इसलिए आंखें बंद सी हो रही हैं मन बात करने का नहीं है आप कोई बात कहो कोई परेशानी तो नहीं हुई हमारे घर में? अमरजीत ने पूछा। आपके घर में क्या परेशानी किसी चीज की कमी थोड़ी है। बस हमारी लड़की की तबियत खराब हो गई कहकर वह चुप हो गई। सिमरन ने दोनों को देखकर सोचा इसमें मेरा क्या कसूर। अमरजीत ने हँसकर कहा शायद हमारे डर के कारण ये सब हो गया। मामी हँस पड़ी। सिमरन शर्माकर रह गई। लो गाँव आ गया। सिमरन के घर वाले दूर से गाड़ी को आती देखकर बाहर आकर खड़े हो गये। कार से निकलकर अमरजीत ने सास–ससुर के पाँव छुये और आगे खड़ा हो गया। सिमरन निकलकर माँ से लिपटकर रो पड़ी फिर दोनों रोने लगीं। पिता ने डांटकर कहा चलो अंदर बैठकर बात कर लेना। अमरजीत इधर कमरे में बैठ गया। फिर थोड़ी देर बाद उसने अपने ससुर से कहा कि इसे हफ्ता यहीं रहने दो मैं फिर आकर इसे ले जाऊंगा। दोपहर तक वह वहीं रहा फिर घर के लिए निकल पड़ा। ये सात दिन कैसे निकल गए पता ही नहीं चला। सिमरन ठीक–ठाक हो गई थी पर कुछ कमजोर दिख रही थी। अमरजीत उसे जल्दी से लेकर आना चाहता था लेकिन ससुराल वाले उसे भेजने में देर करा रहे थे। तैयारी करते–करते शाम होने लगी। अमरजीत ने कहा कि अब देर मत करो जल्दी से इसका स्कूटर तैयार कर दो। थोड़ी देर बाद दोनों अपने स्कूटर पर सवार होकर उड़ चले। रास्ते में खेतों में सरसों के पीले–पीले फूल कितने अच्छे लग रहे थे। कहीं कहीं गेहूँ की बालियाँ हवा के झोंकों से लहरों की तरह झूम रही थी। अमरजीत के पीछे बैठी सिमरन ने अपना सिर अमरजीत के कंधे पर रख दिया। हवा में क्या खुशबू थी। पता ही नहीं चला कब घर पहुँच गए। अमरजीत का इंतजार उसके माता–पिता कर रहे थे। सिमरन ने स्कूटर से उतरते ही दोनों के पाँव छुये। माँ ने हँसकर उसे गले लगा लिया। घर में जैसे रौनक आ गई। बुआ, ताई, चाची सभी ने उसको बड़े दुलार के साथ अन्दर कमरे में बैठा दिया। कमरा कितना महक रहा था। सिमरन की आँखें दरवाजे पर लगी हुई थी और नॉनस्टॉप टप टप रो कर रही थी। अमरजीत ने अंदर आकर कहा और कितने दिन की छुट्टी बची है। बस पन्द्रह दिन की और बाकी है सिमरन की बात सुनकर अमरजीत कुछ सोचने लगा। सिमरन बातों में लग गई। इस तरह से सारा दिन बातों में ही चला गया। रात को दोनों एक कमरे में बैठे बाते कर रहे थे। बातो ही बातो में रात के 2 बज गये। सिमरन सो जाओ रात ज्यादा हो गई है सुबह जल्दी उठना है, कहकर अमरजीत रजाई ओढकर लेट गया। सिमरन असमंजस में पड़ गई क्या करूं। चुपचाप वह भी पलग पर दूसरी रजाई लेकर सो गई। सुबह अमरजीत ने कहा चलो कल शिमला चलते है कुछ दिन वहाँ रहेंगे। माँ पिता जी को मैंने बता दिया है। सिमरन ने होशियारपुर के सिवाय और कोई शहर नहीं देखा था। उसने कहा अगर डलहोजी चले तो? कोई बात नहीं हम वहीं चलते हैं। कहकर हंसने लगा। सिमरन भी हंसने लगी। दिन पूरा तैयारी मै निकल गया। माँ बार–बार कमरे में आती और कुछ देर रूकने के बाद मन में खुशी को समाये चली जाती। सुबह दोनों बस लेकर डलहौजी के लिए रवाना हो गए। बीच की दो सीटे उस पर वह बैठे बातें करते रहे बीच–बीच में सिमरन थक जाती तो वह खड़ी हो जाती। इसी तरह पठानकोट बस अड्डे पर बस रुकी तो ड्राईवर ने कहा रोटी खा लो। आधे घंटे बाद बस चलेगी दोनो उतरे और

सामने एक होटल मे घुस गए। टेबल पर अपना लंच का डिब्बा रखकर अमरजीत ने सिमरन से कहा में अभी आता हूँ। लौटने में उसे कुछ देर हो गई उसने देखा कि सिमरन सामने एक और आदमी को खाने की नज़र से देख रही है। अमरजीत देखकर कुछ बोला नहीं चुपचाप वह सामने बैठ गया। सिमरन ने अमरजीत की मौजूदगी को दरकिनार कर दिया। वह बीच में खाते–खाते उस आदमी को देखती रही। अमरजीत मन में अपने आप को कोसने लगा काश में इससे अपने मन की बात कह देता। लेकिन अब तो कुछ नहीं हो सकता। लगता है मैंने समझने में गलती कर दी। अगर मैं इसको पसंद नहीं था तो उसी वक्त क्यों नहीं कहा इसने जो इस तरह की हरकत करके मेरी इज्जत उतार रही है। जो भी देखे कहेगा कल की शादी आज डोरे दूसरे पर, शायद मुझे देखने में गलती हो सकती है। इस तरह वह चुपचाप सामने बैठा खाना खाता रहा। सिमरन ने बीच–बीच में एक दो बार कहा भी लेकिन अमरजीत ने कोई जवाब ही नहीं दिया वह तो यह चाहता था कि जब मै इसको चाहता हूँ तो यह भी क्यों नहीं चाहती। मैं इस पर मरता हूँ तो इसे भी बदले में वैसे ही करना चाहिए। चाहत जरूरी नहीं कि दोनों तरफ हो एक तरफा भी हो सकती है पर वह ज्यादा देर तक नहीं रहती आदमी सिर्फ पत्नी से प्यार चाहता है क्योंकि उसे कोई दूसरा व्यक्ति पंसद नहीं होता इसके लिए वह कुछ भी कर सकता है। जब तक दोनो एक दूसरे पर समर्पित नहीं होते तो उनमें धीरे–2 दूरी आने लगती है आज है कल नहीं, बस आग की चिंगारी का इंतजार रहता है या फिर किसी को झुकना पड़ता है। झुकना समझौता होगा। बस इन्ही बातों की सोच में उसने खाना खत्म कर दिया। वह दोनो चुपचाप अपनी सीट पर बैठ गए। इसी तरह डलहौजी आ गया। वहां वह एक होटल में ठहरे। अमरजीत ऊपरी मन से उसके साथ रहा उसने अपने अंदर की लपटों में सिमरन को कोई स्थान नहीं दिया।

दोनो घर वापस आ गए। स्कूल में जाना शुरू कर दिया। शादी हुए दो महीने हो गए। सिमरन सुभाषी और सुशील थी। जल्द ही उसने घर की सारी जिम्मेवारी सम्भाल ली, लेकिन उन दोनों में अभी तक सिर्फ दोस्ती थी। शरीर और आत्मा का मिलन नहीं हों सका। एक दिन सिमरन की भाभी आई और उसने उससे पति–पत्नी के रिश्ते के बारे में पूछा तो उसने कहा हमारा ऐसा कोई सम्बंध नहीं है इस पर उसकी भाभी ने उसकी न जाने क्या–क्या कह दिया। सिमरन घबरा गई। परजीत दूसरे कमरे में सब सुन रहा था। जब रात हुई तो सिमरन को उसने कहा कि ऐसा है मुझे डॉक्टर ने मना कर दिया था। कि लगभग दो महीने इसके साथ सोना ठीक नहीं है क्योंकि अंदर से यह काफी कमजोर हो जायेगी इसलिए इसे आराम की सख्त जरूरत है सिमरन ने कहा। डॉक्टर तो ऐसे ही कहते रहते है। आप ने मुझे पहले क्यों नहीं बताया इतने दिन आप चुप क्यों रहीं, अमरजीत ने कहा मैं कोई कसाई तो नहीं और न ही बूढ़ा हो गया हूँ, साल बीत गया पता भी नहीं चला। सिमरन की गोद हरी हो गई। बेटा हुआ। बेटा थोड़ा–थोड़ा चलने लग गया। दूसरे साल एक बेटा और हो गया माँ–पिताजी बहुत खुश थे।

बच्चे इतने बड़े हो गए पता भी नहीं चला। सिमरन और अमरजीत अधेड़ उम्र के हो गए। माँ–पिताजी का देहांत हो गया। अमरजीत शादी के बाद से ही शांत रहते। ये कभी सिमरन के पास ज्यादा समय नहीं बैठते। बस पति का फर्ज अदा कर रहे थे। लेकिन उन्होंने अपने अलावा किसी और को जानने का मौका नहीं दिया। बच्चों को अच्छी शिक्षा दिला दी। दोनों अपने पैर पर छोटी उम्र में ही खड़े हो गए। दोनों की शादी करके अमरजीत ने अपने पिता का फर्ज अदा कर दिया। शादी के बाद हवेली की जो थोड़ी बहुत रोनक थी वह खत्म हो गई। बच्चे अपने–अपने कमरों में चले जाते अमरजीत अपना आँखें मूंदकर भगवान के भजन में लगा रहता। वह कभी भी गुस्सा नहीं करता बस हमेशा शांत सब कुछ चुपचाप सुनता रहता।

एक दिन सुबह जल्दी उठकर अपने कमरे में जमीन पर चटाई बिछाकर लेट गया। ऐसा लेटा कि दुबारा नहीं उठा। घर में मातम सा छा गया। किसी तरह सिमरन ने अपने–आप को अकेले रहने के लिए ढ़ाल लिया। सिमरन अकेली आपने दोनो पोतों के साथ मन बहलाती लेकिन फिर भी उसका मन नहीं लगता। वह किताब पढ़ने लगती। इस तरह उसने अलमारी में रखी काफी किताबें पढ़ ली। एक दिन वह उन बाकी बची किताबों को अपने पसंद के हिसाब से देख रही थी कि तभी उसे एक डायरी दिखाई दी। उसने उसे उठाया और कुछ पन्ने पलटे। जिसमें अमरजीत ने अपनी शादी का और आगे तक का अपने हिसाब से वर्णन किया हुआ था। उसे पढ़कर सिमरन को अपनी शादी के दिन याद आ गये। इसी तरह उसने कुछ आगे और पन्ने पलटे तो वह सन्न रह गई। पन्ने में एक लकीर को लाल रंग से लिखा हुआ था "मैं इस औरत को सही समझ सका जिसे शादी के दिन ही मैं पहचान गया ये वैसी ही निकली जो इसने पहले दिन रूप दिखाया, अंत तक वैसा ही रहा। इससे मैं पीछे हटने वाला नहीं बस फर्क इतना है इसे मैं काम समझकर निपटाता गया। न मैं इसे प्यार करता हूँ न करूँगा। पीछे हटना मेरा स्वभाव नहीं इसलिए पूरा फर्ज़ अदा किया, लेकिन ऊपरी तौर पर। अगर इस शादी में प्यारे लाल को थप्पड़ मार कर अपनी इमानदारी का सबूत न भी देती तो भी मेरे विचार बदलने वाले नहीं क्योंकि जो शादी के बाद पहला प्रभाव था उसमें ही सिमरन ने अपना दर्ज़ा खो दिया। ''पढ़कर सिमरन का कलेजा फटने को हो गया।'' इतने साल तक मेरे साथ सिर्फ रोल अदा करते रहे। कम से कम मुझे बता तो देते शायद इसीलिए वह हमेशा शांत रहते थे। कितना भी कष्ट क्यों न हो मुझे नहीं बताते थे। ओह! मुझे एक मौका तो देते उसके आंसू झर–झर टपकने लगे लेकिन इन्हें देखने वाला अब कौन? पढ़कर उसका मन उदास हो गया। न चाहकर भी उसने एक पन्ना अखिरी पढा जिसमें लिखा था "प्रभु मैं मरने से नहीं डरता, बस चिंता इस बात की है कि मरते दम तक मैं किसी से कोई मदद न लूँ। मरने से पहले सिमरन के हाथ मेरे शरीर पर न लगे।" ''हाय ये क्या मै इतनी बदकिस्मत निकली जो अपने पति के मन में इतना भी स्थान न पा सकी। इन्होंने मरते दम तक मुझे अपना नहीं माना। मुझे पता भी नहीं चला मुझपर कभी विश्वास ही नहीं किया।'' आगे पढा "उस दिन जब रात को मैंने सिमरन को किसी दूसरे के साथ खड़े देखा तो रही सही कसर उसने पूरी कर दी"। पढ़कर सिमरन से रहा नहीं गया। अरे वह तो मेरा भाई था जो पिता जी से लड़कर आया था, इसलिए घर में घुसे बिना ही चला गया। तभी तो बिना खाना खाये उस दिन सो गये। सिमरन की आँखों के आगे अंधेरा छा गया। ओह! मेरा तो आपके सिवाय और कोई नहीं। आप ही तो थे जो कुछ थे। मैंने कभी सपने में भी नहीं गलत सोचा। मैं तो एक औरत हूँ वह कह नहीं सकती। आप तो मुझसे पूछ सकते थे। कितने साल अपने–आप को जलाया और मुझे इसका एहसास तक न होने दिया। क्या मेरा यही कसूर है कि मैं एक औरत हूँ? मेरा कोई जानने का हक नहीं? क्या मैं किसी को नहीं देख सकती? कहकर वह डायरी को अपने हाथ में लिए मन में प्रार्थना करने लगी, हे भगवान आपने मेरे पति की सुनी तो मेरी क्यों नहीं सुनते। मुझे अगले जन्म में उनकी ही पत्नी बनाना जो मेरी छवि को उन्होंने समझा उस में अच्छी छवि दिखा सकूं। वह उठी और पलंग पर लेट गई। डायरी को अपनी छाती पर रख कर सो गई। पिंजरे का पंछी उड़ गया, बात सच्ची हो गई जो बात अमरजीत नहीं कह सका उसे उसकी डायरी ने कह दिया। पंछी बिछड़ गए।

संपर्क सूत्रः मनोज रमेला, उप कुलसचिव, एन.एस.डी.
E-mail: manojramela1922@gmail.com

प्रवासी भारतीयों का भारत-प्रेम

श्री धर्मवीर

भारत का एक अपार जनसमूह देश की सरजमीं से दूर अनेक अन्य देशों में बसा हुआ है। इस समूह में वे लोग शामिल हैं जो भिन्न–भिन्न उद्देश्यों से विदेशों में बसे हुए हैं – कुछ स्थायी रूप से और कुछ अस्थायी। इनमें से कुछ हाल ही के वर्षों में वहां बसे हैं और कुछ वे हैं जिनके पूर्वज अंग्रेजों द्वारा भारत से, कमोबेशी जबरन, ले जाए गए मजदूर थे। इन सभी भारतवंशियों को 'प्रवासी' या 'डायस्पोरा' कहा जाता है।

डायस्पोरा (Diaspora) या प्रवासी भारतीय वे लोग हैं जो अपनी जन्मभूमि छोड़कर दुनिया के अन्य हिस्सों में रह रहे हैं, लेकिन अपनी मातृभूमि से भावनात्मक, सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से जुड़े रहते हैं। यह शब्द ग्रीक शब्द ''डायस्पोरा'' से आया है, जिसका अर्थ है ''बिखराव'' जिसमें लोग अपने देश से दूर जाकर बसते हैं। डायस्पोरा समुदाय अपनी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखते हैं, जिसमें उनकी भाषा, धर्म, और परंपराएं शामिल हैं। डायस्पोरा समुदाय अपने मूल देश और रहने वाले देश दोनों में आर्थिक और सामाजिक प्रभाव डालते हैं। भारतीय डायस्पोरा दुनिया भर में फैला हुआ है, और वे अपने मूल देश की सांस्कृतिक और आर्थिक पहचान बनाए रखते हैं।

भारत से लोगों का दूसरे देशों में जा कर बसना कम से कम दो हजार वर्षों से चला आ रहा है। लगभग आठ समुदाय अलग–अलग काल में भारत से जा कर दूसरे देशों में बस गए। ईसापूर्व दूसरी शताब्दी में तमिलभाषी श्रीलंका गए, जिप्सी नाम से विख्यात रोमनी लोग ईसापूर्व चौथी शताब्दी और ग्यारहवीं–शताब्दी के दौरान अफगानिस्तान की तरफ से टर्की होते हुए यूरोप, अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अमेरिका, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया में फैल गए। भारत मूल के लोग पांचवीं शताब्दी और फिर बीसवीं शताब्दी में इंडोनेशिया गए। उन्नीसवीं शताब्दी में सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैंड, बर्मा, हांगकांग आदि, 1834–1917 के दौरान शर्तबंद श्रमिक मॉरिशस, रियूनियन, गयाना, त्रिनिदाद, सूरीनाम, ग्वाडालूप, फीजी, दक्षिण अफ्रीका आदि, उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में नेपाल, और बीसवीं शताब्दी में यूरोप, अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया आदि देशों में भारतीयों का भारत से विदेश–गमन और प्रवासन हुआ। सभी समुदायों ने अपनी संस्कृति के कुछ अवयवों का पीढ़ी–दर पीढ़ी संरक्षण किया है। इन संरक्षित उपकरणों में है–धर्म, खाना और मानस पटल पर अंकित कुछ संस्कार। परंतु भाषा का उपकरण वे हर जगह नहीं बचा पाए।

निस्संदेह, सुदूर बसे प्रवासी संस्कृति और भाषा दोनों के संरक्षण की दिशा में प्रयासरत हैं।

अब बात करें गिरमिटिया मजदूर या कुली कहे जाने वाले उन लोगों की जिनको प्रताड़ित और शोषित किया जाता था। गिरमिटिया उन भारतीय मजदूरों को कहा जाता था जिन्हें 19वीं और 20वीं शताब्दी में ब्रिटिश सरकार द्वारा विदेश में विशेष रूप से फिजी, मॉरिशस, त्रिनिदाद और टोबैगो, और दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में, मजदूरी करने के लिए ले जाया गया था। ये मजदूर अक्सर गरीबी और भुखमरी से बचने के लिए अपने घरों से दूर जाते थे "गिरमिट" अंग्रेजी के शब्द Agreement-अनुबंध से बना है जिसे भारतीय मजदूर अपनी बोली में "गिरमिट" कहते थे। इसी से गिरमिटिया शब्द प्रचलित हुआ। गिरमिटिया मजदूरों को अक्सर कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था, जिसमें लंबे काम के घंटे, कम मजदूरी, और रहने की खराब स्थिति शामिल थी। हालांकि, इन मजदूरों ने अपने संघर्ष और परिश्रम से अपने नए देशों में महत्वपूर्ण योगदान दिया और अपनी संस्कृति और परंपराओं को बनाए रखा।

बावजूद इसके, इनके वंशजों ने आज उन देशों में अपना सुदृढ़ स्थान बना लिया है। कठिन व कठोर परिस्थितियों का सामना करते हुए भी पीढ़ी–दर पीढ़ी, प्रगति की राह चलते हुए, इन भारतवंशियों ने भारतीय संस्कृति का प्रचार प्रसार इतनी प्रबलता से किया कि आज–इन देशों में भारतीय संस्कृति, सभ्यता और धर्म की ऐसी झलक देखने को मिलती है कि भारत से दूर होते हुए भी इन देशो में भारतीयता की महक चहुं ओर महसूस की जा सकती है।

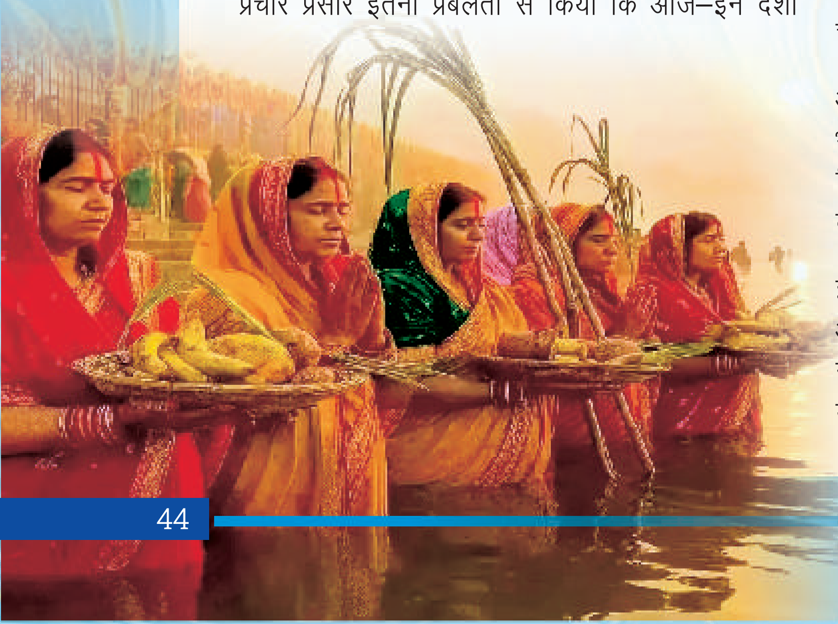

समुद्र में स्थित मंदिर विश्व के अनोखे धार्मिक स्थलों में से एक है। इसे सामान्यतः सीवदास साधु शिव मंदिर (Temple in the Sea) के नाम से जाना जाता है, जो त्रिनिदाद और टोबैगो देश में समुद्र के बीच बना हुआ है। यह मंदिर केवल एक पूजा स्थल नहीं, बल्कि आस्था, संघर्ष और संकल्प की अद्भुत मिसाल है।

इस मंदिर का निर्माण भारतीय मूल के साधु सीवदास साधु ने किया था। वे उन भारतीयों में से थे जिन्हें 19वीं सदी में गिरमिटिया मजदूर के रूप में विदेश ले जाया गया था। जब उन्हें भूमि पर मंदिर बनाने की अनुमति नहीं मिली, तब उन्होंने हार मानने के बजाय समुद्र में ही मंदिर बनाने का निश्चय किया। वर्षों तक उन्होंने अपने हाथों से पत्थर ढोकर समुद्र में डाले और एक छोटा सा द्वीप तैयार किया, जिस पर भगवान शिव का मंदिर स्थापित किया गया।

मंदिर का निर्माण पूरी तरह भक्ति और परिश्रम से हुआ। इसमें किसी आधुनिक मशीन या तकनीक का उपयोग नहीं किया गया। यह मंदिर उस समय के भारतीय प्रवासियों की कठिन परिस्थितियों, उनके आत्मसम्मान और धार्मिक आस्था को दर्शाता है। समुद्र की लहरों के बीच खड़ा यह मंदिर मानवीय इच्छाशक्ति के सामर्थ्य को प्रकट करता है। आज समुद्र में स्थित यह मंदिर न केवल हिंदू श्रद्धालुओं के लिए एक पवित्र स्थल है, बल्कि विश्वभर के पर्यटकों के लिए भी आकर्षण का केंद्र है। महाशिवरात्रि और अन्य धार्मिक अवसरों पर यहाँ विशेष पूजा–अर्चना होती है। यह मंदिर गिरमिटिया भारतीयों की सांस्कृतिक पहचान और विरासत का प्रतीक बन चुका है।

अंततः कहा जा सकता है कि समुद्र में स्थित मंदिर भक्ति, संघर्ष और विश्वास की अमर कहानी है। यह सिखाता है कि सच्ची श्रद्धा और दृढ़ संकल्प से असंभव को भी संभव बनाया जा सकता है।

इसी तरह त्यौहारों की बात करें तो विदेशों में छठ पूजा, आस्था और उत्साह के साथ मनाई जाती है। फीजी, न्यूजीलैंड, अमेरिका (न्यूयॉर्क, सैन फ्रांसिस्को), कनाडा, यूके (लंदन, बर्मिंघम), ऑस्ट्रेलिया (मेलबर्न), मॉरीशस और

दुबई जैसे देशों में भारतीय समुदाय बड़े पैमाने पर इसे मनाते हैं। अमेरिकी शहरों में झीलें या सामुदायिक पूल, यूके में पैडलिंग पूल, और दुबई में समुद्र तट (अल ममजार बीच) जैसे स्थानों पर अर्घ्य दिया जाता है। लंदन और बर्मिंघम में भोजपुरी समाज के लोग धूमधाम से मनाते हैं, स्थानीय प्रशासन भी सहयोग करता है। महाशिवरात्रि, गणेश–चतुर्थी, तुलसी–विवाह, कृष्ण जन्माष्टमी, रक्षा बंधन और हनुमान–जयंती इत्यादि जैसे पर्वों पर भी भारत की तरह ही विधिवत पूजा–अर्चना की जाती है और मंदिरों की शोभा देखते ही बनती है। यदि भारत से दूर ऐसे पवित्र दिनों पर आपको इतना सुंदर धार्मिक वातावरण और ऐसे आयोजनों में शामिल होने का अवसर मिल जाए तो क्या आपको रत्ती भर भी यह महसूस होगा कि आप वास्तव मे स्वदेश से मीलों दूर हैं?

विदेश में रहने वाले भारतीय अक्सर सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेते हैं, जैसे कि दिवाली, होली, नवरात्रि आदि। ये कार्यक्रम उन्हें अपनी संस्कृति से जुड़े रहने में मदद करते हैं। भारतीय भोजन विदेश में भी आसानी से मिल जाता है, और लोग अक्सर अपने घरों में भारतीय व्यंजन बनाते हैं। इससे उन्हें अपने देश के स्वाद और खुशबू की याद आती है।

विदेशों में प्रवासी भारतीयों का जीवन मिलाजुला होता है, जहाँ उन्हें बेहतर बुनियादी ढांचा, उच्च जीवन स्तर और पेशेवर अवसर मिलते हैं, लेकिन उन्हें सांस्कृतिक समायोजन, घर की याद, परिवार से दूरी और कभी–कभी अप्रवासी विरोधी भावनाओं जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वे आर्थिक रूप से सफल होते हैं, लेकिन अपने बच्चों के भविष्य और सुरक्षा को लेकर चिंतित रहते हैं, और अक्सर भारत से भावनात्मक जुड़ाव बनाए रखते हैं। हालांकि वे नए देश के साथ गहराई से घुलमिल जाते हैं।

प्रवासी भारतीयों का जीवन स्तर अक्सर उच्च होता है, जिसका मुख्य कारण उनकी उच्च शिक्षा, कौशल, कड़ी मेहनत और सांस्कृतिक मूल्यों (जैसे शिक्षा और परिवार पर जोर) का संयोजन है, जिससे उन्हें विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं में सफल होने और बेहतर आय अर्जित करने में मदद मिलती है; हालांकि, उन्हें पहचान, अलगाव और कानूनी मुद्दों (जैसे संपत्ति विवाद) जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिनके लिए भारत सरकार की सहायता और नीतियों की आवश्यकता होती है ताकि 'प्रतिभा पलायन' को 'प्रतिभा लाभ' में बदला जा

सके। कई प्रवासी इंजीनियर, डॉक्टर, आईटी पेशेवर और उद्यमी होते हैं, जिनकी विकसित देशों में उच्च मांग है। अच्छी शिक्षा और कुशल नौकरियों के कारण, वे बेहतर आय अर्जित करते हैं और जीवन स्तर (आवास, जीवनशैली, बचत) में सुधार करते हैं।

शिक्षा, परिवार और कड़ी मेहनत पर पारंपरिक भारतीय जोर उन्हें आर्थिक रूप से सफल होने में मदद करता है। भारतीय–अमेरिकी जैसे समुदाय अमेरिका में सबसे सफल जातीय समूहों में से एक माने जाते हैं।

अलगाव, अपनी पहचान और अपनेपन की भावना की कमी, पारिवारिक मुद्दे–संपत्ति विवाद, वैवाहिक मुद्दे, जिन्हें राजनैतिक और कानूनी हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है। आईटी, बायोटेक जैसे क्षेत्रों में उच्च शिक्षा और बेहतर नौकरी के मौके मिलते हैं, जिससे वे बड़ी कंपनियों में शीर्ष पदों पर पहुंचते हैं।

प्रवासी भारतीयों के लिए बेहतर करियर के अवसर विभिन्न देशों में हैं, खासकर कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, जर्मनी, यूएई, अमेरिका और यूके जैसे देशों में, जहाँ आईटी, हेल्थकेयर और इंजीनियरिंग क्षेत्रों में मांग है और अनुकूल आप्रवजन नीतियां हैं। ये देश अच्छे जीवन स्तर के साथ कुशल पेशेवरों को आकर्षित करते हैं, और भारतीय प्रवासी अक्सर अपने सांस्कृतिक मूल्यों और शिक्षा के कारण आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

भारतीय प्रवासियों की सफलता उनकी मजबूत शैक्षिक योग्यता, पारंपरिक सोच और सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ी है, जिससे वे जिस भी देश में जाते हैं, वहाँ की अर्थव्यवस्था को मजबूत करते हैं। भारतीय पेशेवर आईटी, स्वास्थ्य सेवा, इंजीनियरिंग, प्रबंधन और वित्तीय सेवाओं जैसे क्षेत्रों में अपनी विशेषज्ञता के लिए जाने जाते हैं।

प्रवासी भारतीय दिवस का 18 वां सम्मेलन 8 से 10 जनवरी, 2025 तक भुवनेश्वर ओडिशा मे आयोजित किया गया, जिसका मुख्य विषय "विकसित भारत में प्रवासी भारतीयों का योगदान" था। इस कार्यक्रम का माननीय प्रधानमंत्री श्री मोदीजी द्वारा भव्य उद्धाटन किया गया। इसमें सांस्कृतिक प्रदर्शनियाँ और "प्रवासी भारतीय एक्सप्रेस" शामिल थे। पी आई बी और दृष्टि आई ए एस की रिपोर्ट के अनुसार इस सम्मेलन का समापन माननीय राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मूजी द्वारा प्रवासी भारतीयों के योगदान के लिए प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार प्रदान करने के साथ हुआ।

प्रवासी भारतीय भारत और अन्य देशों के बीच आर्थिक, कूटनीतिक और सांस्कृतिक संबंधों को जोड़ने वाले एक महत्वपूर्ण सेतु का काम करते हैं। ये लोग भारत में निवेश करते हैं और ज्ञान साझा करते हैं, जिससे देश के विकास को गति मिलती है। कड़ी मेहनत और कौशल के दम पर वे आर्थिक रूप से मजबूत होते हैं।

अपने मेजबान देशों और भारत के बीच व्यापारिक पुल का काम करते हैं, जिससे द्विपक्षीय आर्थिक संबंध मजबूत होते हैं। भारत आने वाले पर्यटकों और सांस्कृतिक संपर्कों के माध्यम से भी अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देते हैं. कई भारतीय बहुसांस्कृतिक वातावरण में पनपते हैं और स्थानीय संस्कृति व भाषाओं को अपनाते हैं, जिससे उनके रिश्ते मजबूत होते हैं।

विदेशों में भारतीय प्रवासियों की सांस्कृतिक विविधता, भारत की अपनी विविधता (भाषा, धर्म, खानपान, रीति–रिवाज) को अपने साथ ले जाने और उसे स्थानीय संस्कृतियों के साथ मिलाकर एक अनूठी पहचान बनाने से आती है, जिसमें वे अपनी परंपराएं, त्यौहार (जैसे दिवाली, होली, ईद) और भाषाएं (हिंदी, क्षेत्रीय भाषाएं) जीवित रखते हैं, साथ ही वैश्विक परिदृश्य पर भारतीय संस्कृति को समृद्ध करते हैं।

भारतीय वस्त्र–साड़ी, कुर्ता और कला–मेंहदी, रंगोली का प्रचलन विदेशों में भी रहता है, जो भारतीय पहचान को दर्शाता है। संयुक्त परिवार और सामुदायिक सहयोग की भावना भारतीय प्रवासियों में मजबूत होती है, जो उन्हें अपनी संस्कृति से जोड़े रखती है। प्रवासी भारतीय अपनी संस्कृति के माध्यम से विश्व स्तर पर भारत की सांस्कृतिक विविधता का प्रतिनिधित्व करते हैं। यह स्थानीय और भारतीय संस्कृतियों के बीच एक सेतु का काम करता है, जिससे दोनों संस्कृतियों का विकास होता है। प्रवासी अपनी जड़ों और पहचान को बनाए रखते हैं, खासकर नई पीढ़ियों के लिए जो भारतीय संस्कृति को एक गतिशील और बहुआयामी रूप देती है। प्रवासी के लिए कभी–कभी अलगाव व अकेलापन–महसूस होता है। यह एक वास्तविक और अक्सर अनदेखी की जाने वाली चुनौती है। कभी–कभी मेजबान देशों में अप्रवासी विरोधी भावनाएँ बढ़ सकती हैं–, जिससे उन्हें चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। प्रवासी भारतीयों की अप्रवासी भावनाएँ एक जटिल मिश्रण होती हैं, जिसमें अपने देश के (भारत) प्रति गहरा लगाव, नई मातृभूमि में सामंजस्य बिठाने की चुनौती, घर वापसी की इच्छा, के साथ–साथ भारत के विकास में योगदान देना चाहते हैं फिर भी उन्हें अपनी जड़ों और नए जीवन के बीच संतुलन बनाना पड़ता है, जिससे उनमें 'दोहरी पहचान' की भावना पनपती है।

उन्हें अपने बच्चों की शिक्षा, सुरक्षा और पहचान को लेकर चिंता रहती है। प्रवासी भारतीयों के बच्चों की परवरिश एक दोहरी चुनौती है, जिसमें उन्हें अपनी भारतीय सांस्कृतिक जड़ों और नए देश की जीवनशैली के बीच संतुलन बनाना होता है, जिसमें भाषा, मूल्य और पहचान का मिश्रण शामिल है। इसके लिए माता–पिता को सांस्कृतिक शिक्षा और आधुनिक परवरिश के तरीकों के बीच सामंजस्य बिठाना पड़ता है, ताकि बच्चे अपनी संस्कृति से जुड़े रहें और साथ ही स्थानीय समाज में भी घुल–मिल सकें, जिसमें माता–पिता की भूमिका, सामुदायिक समर्थन और सरकारी नीतियों (जैसे शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा) का प्रभाव महत्वपूर्ण होता है।

भारत में संयुक्त परिवार का सहारा होता है, जबकि विदेशों में अक्सर छोटे परिवार होते हैं, जिससे परवरिश की जिम्मेदारी माता–पिता पर अधिक आती है। कुछ देशों में बच्चों की परवरिश में सरकारी एजेंसियां ज्यादा दखल देती हैं, जो भारतीय परिवारों के लिए असामान्य हो सकता है। बच्चे खुद को पूरी तरह भारतीय या पूरी तरह स्थानीय महसूस नहीं कर पाते, जिससे पहचान का संकट पैदा हो सकता है।

विदेश में रहकर भी भारत को दिल में बसाए रखना एक आम बात है! कई लोग अपने देश की संस्कृति, परंपराओं और मूल्यों को अपने साथ लेकर चलते हैं। यहाँ कुछ तरीके हैं जिनसे लोग विदेश में रहकर भी भारत को दिल में बसाए रखते हैंः बिल्कुल सही कहा। विदेश में रहकर भी ''हिंदुस्तान'' दिल से नहीं निकलता। ये तो रोम रोम मे बसता है यानी कि उनके डी एन ए (DNA) में ही बसा है।

भारत से जुड़े रहना – तकनीक के माध्यम से लोग अपने परिवार, दोस्तों और भारत की खबरों से जुड़े रहते हैं।

परंपराएँ – योग तो अब ग्लोबल हो गया है, पर सुबह उठकर सूर्य नमस्कार करना या बच्चों को पैर छूकर आशीर्वाद लेना सिखाना – ये जड़ों से जोड़े रखता है।

टेक्नोलॉजी – वीडियो कॉल पर दादी का ''क्या विशेष खाया?'' पूछना, और भारत के न्यूज चैनल बैकग्राउंड में चलाना। दूरीयां अब सिर्फ एक क्लिक दूर है।

विदेश में रहने का मतलब जड़ें काटना नहीं, बल्कि उन जड़ों को दूसरे देश में भी फैलाना है। आप जहाँ भी रहें, आपकी पहचान, आपके संस्कार, आपकी भाषा–यही तो आपको अनूठा बनाते हैं। एक और खूबसूरत चीज देखी है–दूसरी पीढ़ी के बच्चे जब बड़े होकर कहते हैं ''I am proud to be Indian'' यही तो सही मायने में असली जीत है। हम भारतीयों के विदेशी धरती पर स्वदेश प्रेम की गाथा। सबसे बड़ी बात: भारत सिर्फ जगह नहीं, एक अनुभूति है। पासपोर्ट भले बदल जाए, पर दिल में तिरंगा वैसे ही लहराता रहता है।

संपर्क सूत्रः श्री धर्मवीर,
सहायक कुलसचिव (शैक्षिक), एन.एस.डी.
E-mail: dharamsagar77@gmail.com

त्योहार और पूजा–पाठ– दिवाली, होली, करवा चौथ, नवरात्रि को पूरे जोश से मनाना, घर में छोटा मंदिर बनाना, सुबह अगरबत्ती–दीया करना

भारतीय भोजन बनाना और खाना – घर पर दाल, रोटी, सब्जी, बिरयानी जैसे भारतीय व्यंजन बनाकर लोग अपने स्वाद और संस्कृति को जीवित रखते हैं।

भाषा और बॉलीवुड, कला को बनाए रखना – बच्चों को हिंदी/पंजाबी/गुजराती सिखाना। लोग हिंदी या अपनी मातृभाषा बोलते हैं, बच्चों को भी सिखाते हैं और संगीत, नृत्य जैसी भारतीय कलाओं से जुड़े रहते हैं।

कम्युनिटी से जुड़ना – मंदिर/गुरुद्वारा जाना, लंगर में सेवा करना, गरबा नाइट, बैसाखी मेला, इंडिया डे परेड में जाना,

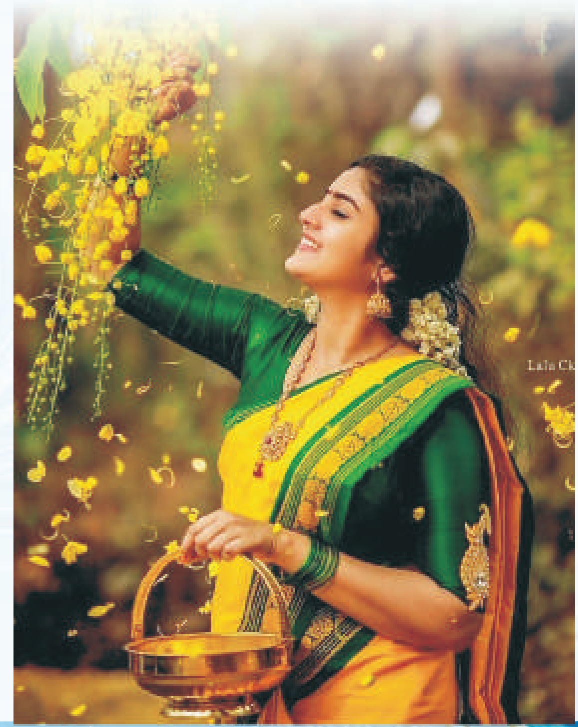

भारत:अंतर्मन का परिदृश्य

(भारतीय संस्कृति, कला और चेतना का विस्तृत विमर्श)

सुश्री मनीषा

भारत केवल एक भौगोलिक इकाई नहीं है, न ही वह केवल इतिहास के पन्नों में दर्ज एक राष्ट्र मात्र है। भारत एक जीवंत अनुभूति है, जो प्रत्येक भारतीय के मन, स्मृति और चेतना में गहराई से बसती है। "भारत मन में बसता है"—यह कथन केवल एक वाक्य नहीं, बल्कि भारत की आत्मा को समझने की एक कुंजी है। भारत को समझने के लिए केवल आँखों से देखना पर्याप्त नहीं, बल्कि उसे महसूस करना, जीना और आत्मसात करना आवश्यक है।

भारत की पहचान उसकी विविधता में निहित है। यहाँ भाषाएँ अनेक हैं, पर भाव एक है। परंपराएँ भिन्न हैं, पर संस्कार समान हैं। भारत की आत्मा उसके लोक में, उसकी संस्कृति में, उसके साहित्य, कला, संगीत और रंगमंच में प्रतिबिंबित होती है। यही वे माध्यम हैं जिनके द्वारा भारत स्वयं को अभिव्यक्त करता है और विश्व से संवाद करता है।

अक्सर यह माना जाता है कि किसी देश की पहचान उसके इतिहास, स्मारकों या उपलब्धियों से होती है, परंतु भारत की पहचान इससे कहीं आगे जाती है। भारत वह देश है जो अपने अतीत को सम्मान देते हुए भी वर्तमान में जीना और भविष्य की ओर देखना जानता है। यहाँ परंपरा और आधुनिकता के बीच कोई टकराव नहीं, बल्कि एक सतत संवाद है।

भारत के गाँवों से लेकर महानगरों तक, जीवन की गति भले ही अलग हो, पर जीवन–मूल्य समान हैं–सह–अस्तित्व, सहिष्णुता और संवेदनशीलता। भारत की सोच केवल भौतिक उन्नति तक सीमित नहीं, बल्कि मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास को भी समान महत्व देती है।

भारतीय संस्कृति को केवल त्योहारों, वेशभूषा या रीति–रिवाजों तक सीमित नहीं किया जा सकता। यह जीवन जीने की एक समग्र शैली है। योग, ध्यान, आयुर्वेद, दर्शन–ये सभी भारतीय संस्कृति के ऐसे आयाम हैं, जिन्होंने आज वैश्विक स्तर पर मानवता को नई दिशा दी है। आधुनिक विश्व में जब मानसिक तनाव, अकेलापन और असंतुलन बढ़ रहा है, तब भारत की ये प्राचीन परंपराएँ आशा की किरण बनकर उभरती हैं।

भारतीय संस्कृति का मूल तत्व है–संतुलन। यहाँ भोग और त्याग, कर्म और ज्ञान, व्यक्ति और समाज–सबके बीच एक संतुलित दृष्टि दिखाई देती है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी उतनी ही प्रासंगिक है।

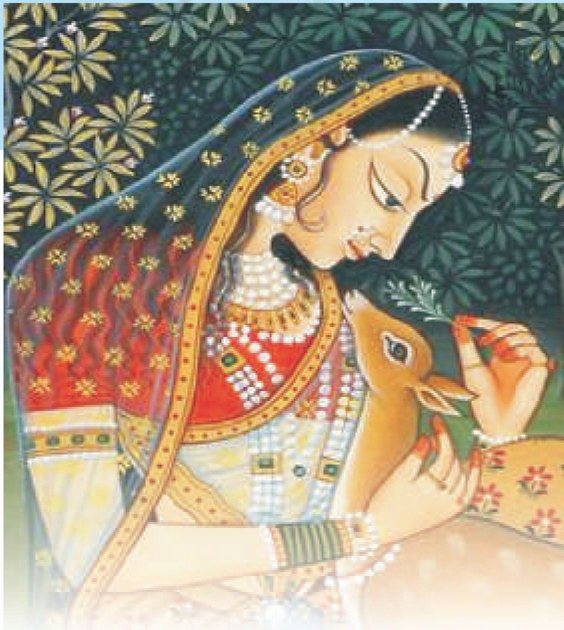

भारतीय साहित्य और रंगमंच सदैव समाज की सच्चाइयों को ईमानदारी से प्रस्तुत करते रहे हैं। मंच पर दिखाई जाने वाली कहानियाँ अक्सर आम लोगों के जीवन से जुड़ी होती हैं—उनकी आशाएँ, संघर्ष, प्रश्न और सपने। यही कारण है कि भारतीय रंगमंच बनावटी नहीं लगता, बल्कि दर्शकों को अपने ही जीवन का प्रतिबिंब दिखाता है।

नाटक, कविता और कथा के माध्यम से भारत स्वयं से प्रश्न करता है, स्वयं को परखता है और स्वयं को समझने का प्रयास करता है। यह आत्मालोचन ही भारतीय कला की सबसे बड़ी शक्ति है। भारतीय रंगमंच केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक संवाद का एक सशक्त माध्यम है।

भारत की सबसे बड़ी विशेषता उसकी विविधता है। यहाँ अनेक धर्म, भाषाएँ, जातियाँ और परंपराएँ हैं, फिर भी एक अदृश्य सूत्र सबको बाँधकर रखता है। यह सूत्र है—मानवीय संवेदना। भारत में भिन्नताएँ दीवार नहीं बनतीं, बल्कि सेतु का कार्य करती हैं।

यही कारण है कि भारत की पहचान किसी एक प्रतीक, उपलब्धि या छवि में सीमित नहीं की जा सकती। भारत की पहचान उसके लोगों में है, उनके व्यवहार में है, उनके जीवन—मूल्यों में है। भारत निरंतर चलते संवाद में है—अपने भीतर भी और विश्व के साथ ।

आज के वैश्विक वातावरण में भारत को अनेक दृष्टिकोणों से देखा जा रहा है—एक उभरती हुई आर्थिक शक्ति के रूप में, एक तकनीकी केंद्र के रूप में, और एक सांस्कृतिक धरोहर के रूप में। परंतु भारत की वास्तविक पहचान केवल इन उपलब्धियों से नहीं बनती। लोग भारत को उसके व्यवहार, उसकी सोच और उसकी मानवीय दृष्टि से पहचानते हैं।

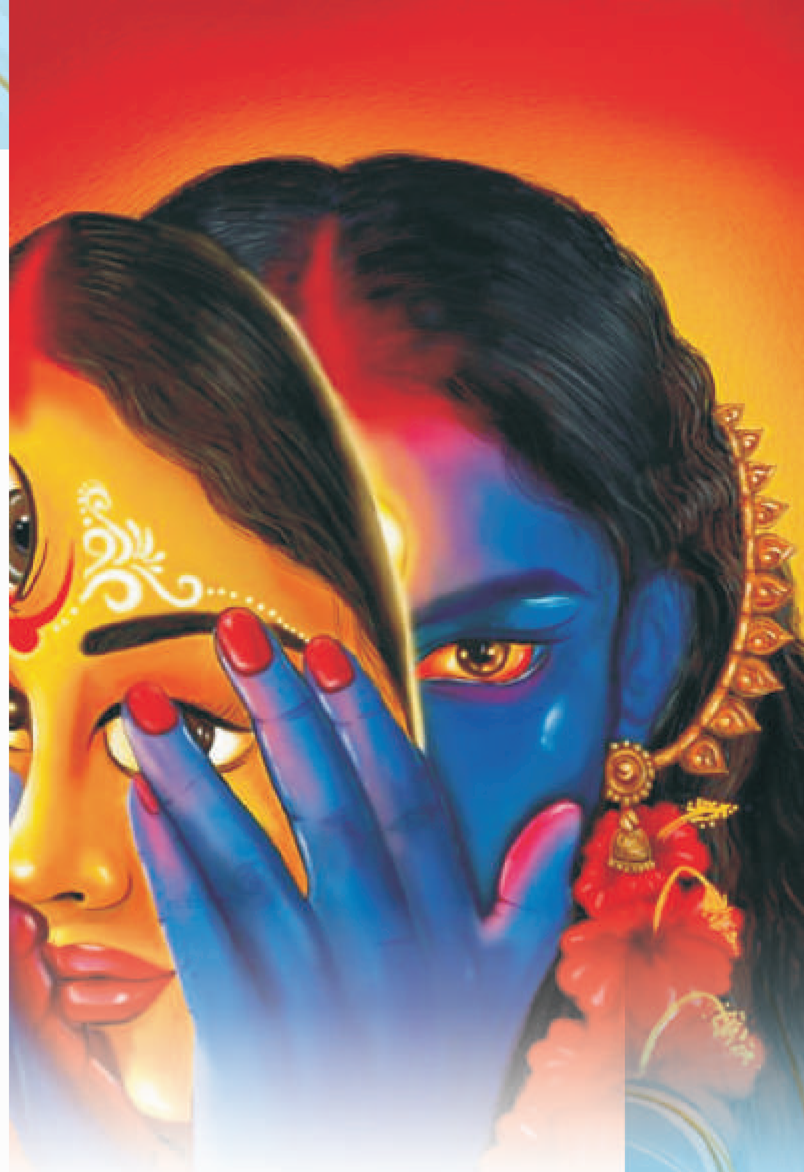

भारतीय संस्कृति ने विश्व को यह सिखाया है कि प्रगति केवल बाहरी नहीं होती, बल्कि आंतरिक भी होती है। यही संदेश आज के अशांत और असंतुलित विश्व के लिए अत्यंत आवश्यक है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि भारत मन में बसता है क्योंकि वह केवल देखने की वस्तु नहीं, बल्कि महसूस करने की अनुभूति है। भारत को समझने के लिए समय चाहिए, संवेदनशीलता चाहिए और खुले मन की आवश्यकता है। भारत किसी एक परिभाषा में बँधता नहीं, बल्कि हर अनुभव के साथ नया अर्थ ग्रहण करता है।

भारत की आत्मा उसकी संस्कृति, कला, साहित्य और लोगों में जीवित है। और जब तक यह आत्मा जीवित है, भारत केवल एक देश नहीं, बल्कि एक निरंतर चलने वाली चेतना बना रहेगा—जो मन में बसती है, सोच में बहती है और जीवन को अर्थ देती है।

सम्पर्क सूत्र : मनीषा,
सहायक कुलसचिव (लेखा), एन.एस.डी.
E-mail: manisha.boyal10@gmail.com

भारत: हमारी सोच में बसा राष्ट्र

सुश्री अंजू दुबे

भारत तो हर भारतवासी के दिल में बसता है। ऐसे कई शहर हैं जिसमें जहाँ लोग रहते हैं वहीं के हो जाते हैं। आज मैं उन शहरों में से एक शहर वाराणसी, काशी जो स्वंय भगवान शिव ने बसाया है उसकी बात करूंगी। यह मान्यता है कि यह शहर उनके त्रिशूल पर टिका है इसे मोक्षदायिनी भी कहा जाता है। मै हूँ शिव की नगरी 'काशी' मेरा इतिहास इतना पुराना है कि इतिहासकार भी मेरी जन्मतिथि ठीक से पता नहीं लगा सके। कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि मैं सृष्टि के आरम्भ से ही अस्तित्व में हूँ। ऋग्वेद में भी मेरे प्राचीन नाम काशी का उल्लेख मिलता है। आजादी के बाद मेरा नाम बनारस पड़ा लेकिन तीनों नाम आज भी जीवित हैं। बनारस नाम सुनते ही मन में मिठास घुल जाती है।

आज मैं आपको अपने शहर से मिलवाना चाहती हूँ। मैं बचपन से तंग गलियों से गुजरते हुए मंदिर के दर्शन करने जाया करती थी। वहां उस मंदिर में कभी बैठ के पूजा आरती करते, माँ की उंगली पकड़ के गंगा किनारे नहाने घाट पे जाते, घंटों गंगा मैया के साथ जल में उछल कूद करते रहते। वहां की, दशाश्वमेध घाट की, आरती को लोग दूर–दूर से देखने आते। देश–विदेश के लोगों के लिए भी यह स्थान काफी लोकप्रिय हो गया है। काशी घाटों एवं गलियों और मंदिरों का शहर महज यूं ही नहीं कहा जाता। यहाँ 84 घाट हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत का जन्म काशी के बनारस घराने से हुआ था। भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक कबीर, संत रविदास, कवि रामानंद, लेखक मुंशी प्रेमचंद और रामचंद्र शुक्ल तथा उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ का जन्म काशी में हुआ।

बनारस यानि काशी का वर्णन स्कंद पुराण के काशी खण्ड में हैं। इसके लगभग 15000 श्लोकों में काशी के विभिन्न तीर्थों का वर्णन है। यह स्थल बौद्ध–जैन धर्म के ऐतिहासिक स्थलों के लिए विश्व प्रसिद्ध है जहाँ जीवन

मृत्यु का अद्‌भुत संगम दिखता है जहाँ मृत्यु को मोक्ष का द्वार माना जाता है। मणिकर्णिका और हरिश्चंद्र घाट पर चिता की आग कभी ठंडी नहीं होती जिसमें जीवन मृत्यु का चक्र सारगार्भित है। शिव का निवास स्थान और 12 ज्योतिर्लिंगों में से एक काशी विश्वनाथ यहाँ है।

यहाँ की बनारसी साड़ी–जो रेशम की बुनाई के लिए प्रसिद्ध है ये साड़ी यहाँ की संस्कृति, पहचान और गौरव है जो मुगलकाल से चली आ रही है। इन साड़ियों में सोने–चांदी के तारों से जरी का काम व बारीक रेशम की बुनाई की जाती है। महीनों लग जाते हैं एक साड़ी तैयार करने में। यह भारतीय परम्परा, और सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है। जिसे पीढ़ी दर पीढ़ी सहेजा जाता है। यह भारतीय हस्तकला का एक अनमोल नमूना है। बनारस का खान–पान बेहद स्वादिष्ट और पारंपरिक है जिसमें गरमागरम कचौड़ी सब्जी, मसालेदार चाट, सर्दियों की खास मलाइयाँ और ठंडाई, लस्सी जैसे पेय प्रमुख हैं। साथ ही यहाँ विश्वप्रसिद्ध बनारसी पान है जो मेहमान नवाजी, त्योहारों और धार्मिक अनुष्ठानों का अहम हिस्सा भी है और यहाँ की मीठी जलेबी भी बहुत लोकप्रिय है। यहाँ लिट्टी चोखा भी काफी प्रसिद्ध है, जो भुने चने और मसालों से भरी लिट्टी, और सब्जियों (बैंगन टमाटर) का मिश्रण–एक लोकप्रिय भोजन है।

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने वाराणसी (काशी) के विकास के लिए काशी विश्वनाथ कॉरिडोर, घाटों और सड़कों के नवीनीकरण, टेंट सिटी, गंगा विलास जैसी परियोजनाओं सहित कई प्रमुख विकास कार्य किये हैं जिससे शहर आध्यात्मिक पर्यटन के साथ–2 आधुनिक सुविधाओं और बेहतर कनेक्टिविटी वाला एक विश्व स्तरीय स्मार्ट सिटी बन रहा है, जिसमें बुनियादी ढांचा, सांस्कृतिक विरासत दोनों पर ध्यान दिया जा रहा है। वाराणसी अब केवल एक आध्यात्मिक केन्द्र नहीं बल्कि विकास और नवाचार का प्रतीक बन रहा है। पर्यटन में वृद्धि हुई है। शहर की पहचान एक सांस्कृतिक और धार्मिक केंद्र के साथ–2 एक आधुनिक शहर के रूप में भी स्थापित हुई है। ये परियोजनाएं वाराणसी को विकसित भारत के विजन के अनुरूप ढाल रही हैं।

सम्पर्क सूत्रः अंजू दुबे, वार्डरोब सुपरवाईज़र, एन.एस.डी.
E-mail: anjudubeynsd@yahoo.com

खुद से रू-ब-रू

सुश्री स्वर्ण लता बेहेरा

मिल जाए तो उसे कहते हैं प्यार,
नहीं तो जिंदगी बीत जाए–कहाँ मिलता है दिल का यार।

ख़्वाहिश, काश इस जन्म में उससे मिल पाती, पर नहीं,
हर सीप में बनती नहीं बारिश की बूँद मोती।

चाँदनी की कोख या अंतर की गहराई,
कहीं तो है छिपा विवेक जिसे शांति की ओढ़नी उढ़ाई।

नदी बन मिल जाऊँ तो वो सागर कहलाएगा,
जीवन प्रश्न है, उत्तर बन उससे मिल जाऊँ तो निर्वाण की डगर कहलाएगा।

उम्र का शोर थमने पर किनारे बैठी,
तो ये क्या देख रही हूँ आँखों में–
जवानी की धूप में भाप बन उड़ गया था जो लाखों में,
आज अंतरिक्ष का अंतर–चीर बह रहा है बरसातों में।

तो कौन कहता है–
यह तो सिर्फ बातें हैं कहावतों में,
कहाँ मिल पाते हैं धरती और आसमाँ बरसातों में?

यह तो सिर्फ बातें हैं कहावतों में
कहाँ मिल पाते हैं धरती और आसमाँ बरसातों में?

मैं उसके इंतज़ार में आँखें धो बैठी हूँ,
पता नहीं क्यों उसी से ही नहीं मिलना,
मुझे हर कहानी के अंतों में।

राधा बन जली, मीरा बन विष पिया,
कपटी बस खेलता रहा, पर निष्कपट है मेरा हिया।

सिया–सी धरती में मिलूँ,
या शबरी जैसा फल–फूल सबरूँ,
अंत की घड़ी में बस अपने आप से ही हूँ रू–ब–रू।

इतिहास की ओढ़नी में झाँकूँ या वर्तमान का आईना ताकूँ,
तन्हाई की ओस भरी ठहरी शाम में बस विरह की चादर में मिला सुकून।

पता है मैं मुस्कुराते हुए रोती हूँ,
दूर आकाश में तारों के बीच उसे ढूँढती हूँ।

सम्पर्क सूत्र: स्वर्ण लता बेहेरा, ध्वनि तकनिशियन, एन.एस.डी.
E-mail: swarnalatabehera02@gmail.com

खुशियों से भरा भारत

सुश्री कविता मिश्रा

भारत शब्द दिखने में जितना छोटा है उसका स्वरूप उतना ही बड़ा है जिसकी व्याख्या जितनी भी की जाए वह सब कम है। सबसे पहले मैंने भारत शब्द के अर्थ को जानना चाहा 'भारत' शब्द का अर्थ 'भा का अर्थ ज्ञान/प्रकाश और 'रत' का अर्थ लीन होना है। इस प्रकार, 'भारत' का अर्थ है वह भूमि जो ज्ञान या प्रकाश की खोज में लीन हो। यह देश की आध्यात्मिक और ज्ञान–केंद्रित परंपरा को दर्शाता है। इसे पौराणिक चक्रवर्ती सम्राट भरत के नाम पर और सिंधु नदी (इंडस) से भी जोड़ा जाता है, जो इसे ज्ञान, समृद्धि और निरंतर खोज का प्रतीक बनाता है। इसके अतिरिक्त भारत एक ऐसा सुन्दर देश है जहाँ पर सभी धर्मों के लोग, रीति–रिवाज, खान–पान, वेशभूषा, बोलियाँ आदि हर एक कदम पर बदल जाती हैं। यहाँ तक कि भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जिसमें आपको सभी मौसम देखने को मिलते हैं चाहे पहाड़, बर्फ, समुद्र, नदियाँ, झरने, रेत, लहलहाते हरे–भरे खेत, चारों ऋतुओं का देश जहाँ गर्मी, सर्दी, बारिश, पतझड़, सब कुछ यहाँ देखने को मिल सकता है। ऐसा किसी और देश में आपको देखने को शायद ही मिलेगा।

यह केवल भौगोलिक सीमाओं तक सीमित नहीं, बल्कि विविधताओं की एक सुंदर माला है। यह वह भूमि है जहाँ हर कदम पर एक नई भाषा सुनाई देती है, हर मोड़ पर एक नई संस्कृति मिलती है, और हर दिल में देशभक्ति की भावना बसती है। भारत केवल दिल्ली, मुंबई या कोलकाता तक ही सीमित नहीं है – यह गांवों की गलियों से लेकर हिमालय की चोटियों तक, रेगिस्तान की रेत से लेकर समुद्र की लहरों तक, हर जगह है।

भारत एक ऐसा देश है जिसकी विशालता केवल प्राकृतिक/क्षेत्रीय सीमाओं में नहीं, बल्कि उसके सांस्कृतिक वैभव में भी मापी जाती है। यह भूमि ऋषियों का तप, वीरों का त्याग, संतों का संदेश, कलाकारों की कल्पना और करोड़ों लोगों की आस्था को एक साथ समेटे हुए है। भारत को केवल एक राष्ट्र कहना उचित नहीं होगा, यह इसके गौरव, और महत्व को सीमित कर देना होगा। यह एक अनुभूति है, एक भाव है, एक संस्कार है जो हर भारतीय के हृदय में गूंजता है। इसी भाव को शब्द देते हुए कहा जाता है, "भारत मन में बसता है।"

भारत की यही विशेषता इसे दुनिया के अन्य देशों से अलग करती है। यहाँ विविधता में एकता का केवल एक नारा ही नहीं, बल्कि जीवन का वास्तविक अनुभव है। भाषा, धर्म, परंपराएँ, त्यौहार, भोजन, पहनावा सब अलग, पर अंतर्मन में एक ही भावना रहती है–भारतीयता। भारत ही एक मात्र देश है जिसने सभी धर्मों को अपना–अपना उचित स्थान देते हुए सभी को एक सूत्र मे बाँधा हुआ है। भारत के इलावा ऐसा और कोई देश नहीं जहाँ पर सभी धर्मों के लोग एक साथ रहते हों–और उन धर्मों के लोगों को अपने–अपने धर्मों की पूर्ण स्वतंत्रता व त्यौहार को मनाने के लिए छुट्टी प्रदान की जाती हो भारत में हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी

सभी धर्म अपनी–अपनी परंपराओं के साथ फलते–फूलते आए हैं। भारत में धर्म, संघर्ष का कारण नहीं, बल्कि जीवन का उत्सव है।

न जाने क्यों सभी लोगों में बाहर देश घूमने जाने की इतनी ललक क्यों होती है जबकि हमारे भारत में इतनी सुंदर–सुंदर जगहें हैं। आखिरकार क्या नहीं है भारत में? देखने के लिए कौन सा मौसम नहीं है? झरने नदियां, पहाड़, समंदर, मरुस्थल, हरियाली आदि सब कुछ है यहाँ पर। जो लोग विदेश जाते हैं बस ऊँची–ऊँची इमारतें, मॉल्स देखने जाते हैं उन्हें विदेश के अलग–अलग मौसम के लिए अलग–अलग देशों मे जाना पड़ता है। उन्होंने कभी अपना देश तो पूरा देखा नहीं होगा, जिसमें इतनी खुशहाली है। इस लेख में हम जानेंगे कि कैसे भारत अपनी अद्भुत विविधताओं के बावजूद एक मजबूत और अखंड एकता का प्रतीक है, और क्यों यह देश हर भारतीय के मन में गहराई तक बसता है।

भारत हर दिल में है–भारत सिर्फ एक देश नहीं, एक भावना है। वह भावना जो हर भारतीय के दिल में बसती है, चाहे वो देश में रहते हों या विदेश में–सभी के दिल में भारत से प्रेम की भावना रहती ही है। हर कोने में भारत की खुशबू है, हर चेहरे पर उसकी छवि देखने को मिलती है। भारत के हर कोने में उसकी खूबसूरती देखने को मिलती है

एक रंग–बिरंगा सांस्कृतिक संसार–भारत की सबसे बड़ी विशेषता इसकी अपार विविधता है। यहाँ कदम–कदम पर भाषा बदलती है, बोली बदलती है, पहनावा बदलता है, भोजन बदलता है, जीवनशैली बदलती है फिर भी हर परिवर्तन के भीतर एक साझा भारतीयता चमकती रहती है।

भारत में 22 आधिकारिक भाषाएँ और सैकड़ों बोलियाँ बोली जाती हैं। हिंदी उत्तर की आत्मा है तो बंगाली साहित्य का सौंदर्य, तमिल इतिहास का अभिमान, पंजाबी उमंग का प्रतीक और मराठी स्वाभिमान का गीत है। भाषाएँ भले अलग हों, लेकिन भारतीयता की भावना हर भाषा को जोड़ती है।

संस्कृति और परंपराओं की बात करें तो– राजस्थान का लोकनृत्य, असम का बिहू, महाराष्ट्र का लावणी, पंजाब का भांगड़ा, केरल का कथकली–हर कला रूप एक अलग कहानी कहता है। पर इन सभी कहानियों का अंत एक ही भाव में होता है–हम भारतीय हैं। वहीं आहार और वेशभूषा के बारे में बात करें तो यह कहना बिलकुल भी गलत नही है कि दाल–बाटी, ढोकला, इडली–डोसा, माछ–भात, लिट्टी–चोखा हर क्षेत्र का भोजन अलग, पर उनकी सुगंध में एक समान अपनापन। कहीं धोती–कुर्ता, कहीं चोली–घाघरा, कहीं साड़ी, कहीं लुंगी–ये विविधताएँ भारत को और सुंदर बनाती हैं।

भारत की विविधता को दुनिया ने हमेशा आश्चर्य की दृष्टि से देखा है। पर भारत का हर नागरिक जानता है कि इस विविधता में एक अंतर्निहित एकता है। एकता का मूल भारतीय मूल्य– भारतीय संस्कृति में कुछ मूल भाव ऐसे हैं जो पूरे देश को एकसूत्र में बांधते हैं

आत्मीयता, अतिथि देवो भवः, सहनशीलता, कर्तव्य और धर्म, सर्वे भवंतु सुखिनः

भारत की यह सोच किसी धर्म, भाषा या क्षेत्र से नहीं, बल्कि हृदय से उपजती है। यहाँ के त्यौहार और परंपराओं का एक अलग ही उत्साह देखने को मिलता है। यहाँ दीपावली और ईद, क्रिसमस और गुरुपर्व, ओणम और बिहू समान उत्साह से मनाए जाते हैं। एक धर्म का त्यौहार दूसरे धर्म के लोग भी समान प्रेम से मनाते हैं। यही है भारत की असली ताकत।

भारत का ऐतिहासिक गौरव एकता का मूल स्रोत–भारत की आत्मा को समझने के लिए इसके इतिहास को जानना आवश्यक है। यह देश आक्रमण सहता रहा, लेकिन हर बार और अधिक मजबूत बनकर उभरा। क्योंकि भारतीयों को जोड़ने वाला सूत्र उनके भीतर की

भावनाओं और मूल्यों में छिपा है। मौर्य और गुप्त साम्राज्य से लेकर चोल और पल्लव वंश तक भारत के विस्तार ने यह बताया कि विविध भाषाओं व संस्कृतियों में भी एक साझा राष्ट्रीय पहचान है। कबीर, नानक, तुलसीदास, मीराबाई, बसवेश्वर– इन संतों ने समाज को विभाजन नहीं, प्रेम, समभाव और एकता का मार्ग दिखाया। एकता का महान उदाहरण–भारत की आजादी केवल एक राजनीतिक लड़ाई नहीं, बल्कि एकता की भावना का चरम रूप था। गांधी, नेहरू, पटेल, सुभाष, भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, इन सबका सपना एक ही था–विविधताओं से भरा, पर एक राष्ट्र भारत।

आज भारत केवल संस्कृति में ही नहीं, बल्कि आधुनिक विकास में भी दुनिया के सामने एक उदाहरण है।

चंद्रमा पर पहुंचने वाला चौथा देश, डिजिटल क्रांति का अग्रदूत, विश्व अर्थव्यवस्था का केंद्र भारत हर क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है। ISRO की उपलब्धियों ने भारत का नाम विश्व में रौशन किया है। स्टार्टअप संस्कृति और डिजिटल इंडिया ने युवाओं में नवाचार की लहर पैदा की है। खेल और कला–ओलंपिक, क्रिकेट, बैडमिंटन, कुश्ती–हर क्षेत्र में भारतीय प्रतिभाएँ चमक रही हैं। बॉलीवुड, शास्त्रीय संगीत, लोककला ये सब विश्व को भारत से जोड़ते हैं।

भारत आज वैश्विक बाजार की एक बड़ी शक्ति के रूप में उभर रहा है। IT, फार्मा, इंजीनियरिंग, शिक्षा हर क्षेत्र में भारत दुनिया को योगदान दे रहा है। दुनिया के किसी भी कोने में जाएँ, आपको वहाँ भारत की झलक मिल जाएगी। भारतीय प्रवासी न केवल भारत की संस्कृति को संजोते हैं, बल्कि उसे दुनिया तक पहुंचाते भी हैं।

वे कहते हैं कि विदेश में रहकर उन्हें अपने देश की असली कीमत समझ आती है–मिट्टी की खुशबू, त्यौहारों का उल्लास, परिवार का प्रेम, गाँव–शहर की बोली सब कुछ मन में बसा रहता है। इसलिए वे चाहे कितने भी दूर हों, भारत उनके दिल में धड़कता रहता है।

भारत एक ऐसा देश जिसकी विशालता केवल भौगोलिक सीमाओं में नहीं, बल्कि उसके सांस्कृतिक वैभव में मापी जाती है। यह भूमि ऋषियों का तप, वीरों का त्याग, संतों का संदेश, कलाकारों की कल्पना और करोड़ों लोगों की आस्था को एक साथ समेटे हुए है। भारत को केवल एक राष्ट्र कहना इसके गौरव, आत्मा और मूल्यों को सीमित कर देना होगा। यह एक अनुभूति है, एक भाव है, एक संस्कार है जो हर भारतीय के ह्रदय में गूंजता है। इसी भाव को शब्द देते हुए कहा जाता है, "भारत मन में बसता है।"

भारत की यही विशिष्टता इसे दुनिया के अन्य देशों से अलग करती है कि यहाँ विविधता में एकता केवल एक राजनीतिक नारा नहीं, बल्कि जीवन का वास्तविक अनुभव है। भाषा, धर्म, परंपराएँ, त्यौहार, भोजन, पहनावा सब अलग, पर अंतर्मन में एक ही भावना है–वह है भारत।

भारत सर्वत्र है। गाँव में, शहर में, पर्वत पर, समुद्र में, संस्कृति में, भाषा में, और सबसे ज्यादा, हर भारतीय के दिल में। यही भारत की पहचान है–हर कोने में एक नया भारत, एक अनोखा भारत।

सम्पर्क सूत्रः कविता मिश्रा, हिंदी टंकक, एन.एस.डी.
E-mail: nsdkavita@gmail.com

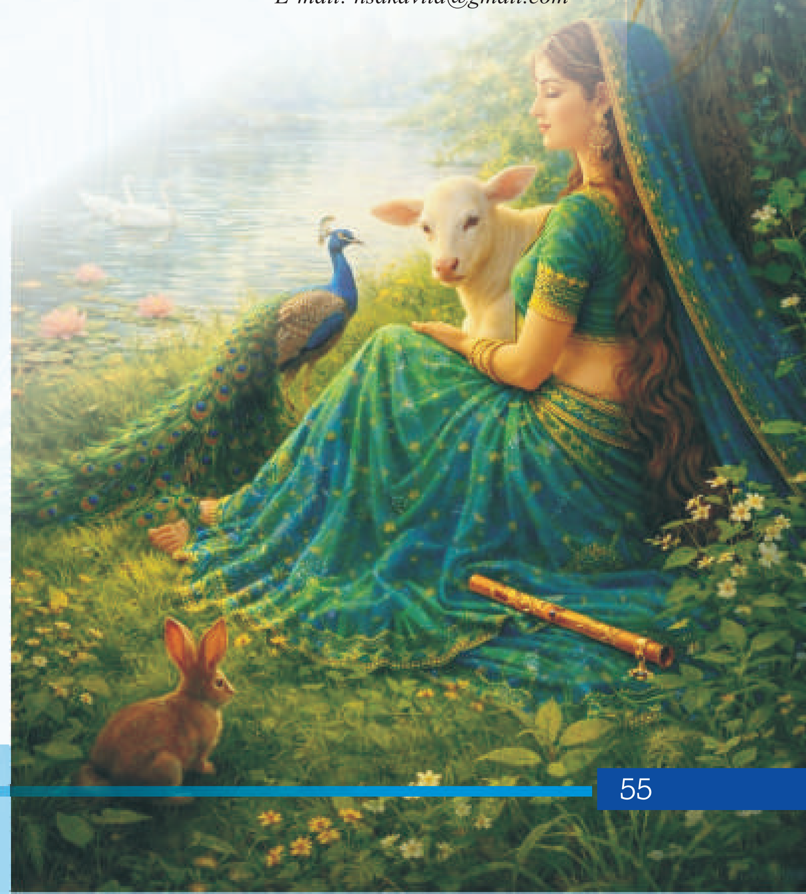

अलौकिक भूमि: भारत

(गुरु गोरखनाथ और मकर संक्रान्ति पर्व पर आधारित)

श्री सत्यम कुशवाहा

गोरखनाथ धाम और खिचड़ी मेला आस्था, संस्कृति, लोकजीवन और भारत मन का विराट उत्सव है और यह उत्सव जनवरी महीने की 14 तारीख से शुरू होता है जिसे पूरे महीने भर यहाँ के निवासी बड़े गर्व से मनाते हैं।

भारत विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है, जिसकी आत्मा उसकी धार्मिक परंपराओं, लोकसंस्कृति और सामाजिक चेतना में बसती है। भारत का प्रत्येक क्षेत्र अपनी विशिष्ट पहचान रखता है, किंतु उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल क्षेत्र में स्थित गोरखपुर ऐसा नगर है जहाँ भारतीय मन की झलक अत्यंत सजीव रूप में दिखाई देती है। गोरखपुर की पहचान गोरखनाथ धाम और वहां प्रतिवर्ष लगने वाले खिचड़ी मेले से है, जो केवल धार्मिक आयोजन नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता, लोक संस्कृति और राष्ट्रचेतना का महान प्रतीक है। गोरखनाथ धाम नाथ संप्रदाय की आध्यात्मिक भूमि है। गोरखनाथ धाम का नाम महान योगी गुरु गोरखनाथ के नाम पर पड़ा है। गुरु गोरखनाथ नाथ संप्रदाय के प्रमुख आचार्य माने जाते हैं। उन्होंने योग, साधना और आत्मशुद्धि के माध्यम से समाज को नई दिशा दी। उनका दर्शन केवल साधना तक सीमित नहीं था, बल्कि सामाजिक सुधार, मानव समानता और आत्मबल की शिक्षा से जुड़ा हुआ था।

नाथ परंपरा ने समाज में व्याप्त अंधविश्वास, छुआछूत और भेदभाव का विरोध किया। गुरु गोरखनाथ ने यह संदेश दिया कि मनुष्य की पहचान उसके कर्म, संयम और चरित्र से होती है, न कि उसकी जाति या सामाजिक स्थिति से। गोरखनाथ धाम आज भी उसी विचारधारा को जीवित रखे हुए है।

गोरखनाथ मंदिर–आध्यात्मिकता और सेवा का केंद्र

गोरखनाथ मंदिर केवल पूजा–स्थल नहीं है, बल्कि यह सेवा, शिक्षा और सामाजिक उत्थान का बड़ा केंद्र भी है। मंदिर परिसर में नियमित रूप से योग, ध्यान और धार्मिक अनुष्ठान होते हैं। साथ ही, सामाजिक सेवा, आपदा राहत और जनकल्याण के कार्य भी किए जाते हैं।

यह धाम लोगों को आत्मिक शांति के साथ–साथ सामाजिक जिम्मेदारी का भी बोध कराता है। यही कारण है कि यहां आने वाले श्रद्धालु केवल दर्शन ही नहीं करते, बल्कि अपने जीवन को अनुशासित, सादा और सेवा–भाव से भरने की प्रेरणा लेकर लौटते हैं। हर साल यहाँ मनाये जाने वाला पर्व खिचड़ी मेला भी अपने आप में एक अलौकिक सरोकार रखता है जिसे मकर संक्रान्ति का पावन पर्व भी कहते हैं।

हर वर्ष मकर संक्रान्ति के अवसर पर गोरखनाथ धाम में लगने वाला खिचड़ी मेला पूरे उत्तर भारत में विशेष महत्व रखता है और यहाँ आने वाले श्रद्धालुओं की भी भीड़ अपरिमित होती है। मकर संक्रान्ति सूर्य के उत्तरायण होने का पर्व है, जिसे कृषि, ऋतु–परिवर्तन और नई ऊर्जा का प्रतीक माना जाता है। इस दिन श्रद्धालु गुरु गोरखनाथ को खिचड़ी अर्पित करते हैं। खिचड़ी–जो चावल, दाल और तिल से बनती है–भारतीय जीवन की सादगी, पोषण और सामूहिकता का प्रतीक है। यह अन्न, प्रकृति और श्रम के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का माध्यम भी है।

खिचड़ी का प्रतीकात्मक महत्व

खिचड़ी को भारत में सबसे सरल, संतुलित और सर्वसुलभ भोजन माना जाता है। इसका धार्मिक अर्थ यह है कि ईश्वर के सामने सभी समान हैं। न कोई अमीर, न कोई गरीब–सभी एक ही प्रसाद ग्रहण करते हैं।

खिचड़ी मेला यह संदेश देता है कि भारतीय संस्कृति में समानता, सहभागिता और सादगी सर्वोच्च मूल्य हैं। यही कारण है कि यह मेला केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता का महापर्व बन जाता है।

लोक संस्कृति और जनजीवन का उत्सव

खिचड़ी मेला गोरखपुर की लोक संस्कृति को जीवंत रूप में प्रस्तुत करता है। मेले में झूले, खेल, लोकगीत, नाटक, कठपुतली, पारंपरिक भोजन और हस्तशिल्प की दुकानें सजती हैं। ग्रामीण जीवन की सादगी और उत्साह यहाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

यह मेला बच्चों, युवाओं, महिलाओं और बुजुर्गों–सभी के लिए आनंद और उल्लास का अवसर होता है। पीढ़ियों से चला आ रहा यह मेला सामाजिक स्मृति और सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखता है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था और स्वरोजगार

खिचड़ी मेला स्थानीय अर्थव्यवस्था के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। दूर–दराज़ के गाँवों से आए कारीगर, दुकानदार, कलाकार और छोटे व्यापारी इस मेले के माध्यम से अपनी आजीविका चलाते हैं।

मिट्टी के बर्तन, लकड़ी के खिलौने, कपड़े, आभूषण, पारंपरिक मिठाइयाँ और स्थानीय व्यंजन इस मेले की विशेष पहचान हैं। यह मेला ग्रामीण स्वरोज़गार को बढ़ावा देता है और आत्मनिर्भर भारत की भावना को मज़बूत करता है।

गोरखनाथ धाम और राष्ट्रीय चेतना

गोरखनाथ धाम केवल धार्मिक या सांस्कृतिक केंद्र नहीं, बल्कि यह राष्ट्रचेतना का भी प्रतीक है। यहाँ से समाज को अनुशासन, सेवा, एकता और राष्ट्रप्रेम की प्रेरणा मिलती है।

नाथ परंपरा ने हमेशा समाज को संगठित रखने और आत्मबल बढ़ाने का कार्य किया है। यही कारण है कि गोरखनाथ धाम आज भी सामाजिक और राष्ट्रीय मुद्दे पर मार्गदर्शक की भूमिका निभाता है।

भारत मन की सजीव अभिव्यक्ति

"भारत मन" का अर्थ केवल भौगोलिक भारत नहीं, बल्कि वह चेतना है जिसमें आस्था, परंपरा, लोकजीवन और आधुनिकता का संतुलन है। गोरखनाथ धाम और खिचड़ी मेला इसी भारत मन की सजीव अभिव्यक्ति हैं।

यहाँ धर्म कठोरता नहीं, बल्कि करुणा है। परंपरा जड़ता नहीं, बल्कि जीवन से जुड़ा उत्सव है। यही भारत की असली शक्ति है।

आधुनिक युग में खिचड़ी मेले की प्रासंगिकता

आज के आधुनिक और तकनीकी युग में भी खिचड़ी मेले का महत्व कम नहीं हुआ है। यह मेला हमें हमारी जड़ों से जोड़ता है और यह याद दिलाता है कि विकास के साथ–साथ सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखना भी आवश्यक है।

यह आयोजन नई पीढ़ी को भारतीय मूल्यों, लोक संस्कृति और सामाजिक एकता से परिचित कराता है। अंततः कहा जा सकता है कि गोरखनाथ धाम और खिचड़ी मेला केवल गोरखपुर की नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारत की सांस्कृतिक धरोहर हैं। यह आयोजन हमें सिखाता है कि सादगी में भी भव्यता हो सकती है और समानता में ही सच्ची शक्ति निहित है।

गोरखनाथ धाम की आध्यात्मिक चेतना और खिचड़ी मेले की लोकसंस्कृति मिलकर उस भारत मन को जीवित रखती हैं, जिसने सदियों से विश्व को शांति, सह अस्तित्व और मानवता का संदेश दिया है।

इतिहासकारों के अनुसार, ब्रिटिश शासन काल में भी गोरखनाथ खिचड़ी मेले का उल्लेख मिलता है। उस समय प्रशासन द्वारा भीड़ प्रबंधन और व्यवस्था के लिए विशेष इंतज़ाम किए जाते थे, जिससे यह स्पष्ट होता है कि तब तक यह मेला क्षेत्रीय नहीं, बल्कि प्रसिद्ध आयोजन बन चुका था।

लोक परंपरा और ऐतिहासिक मान्यता के अनुसार, गोरखनाथ खिचड़ी मेले में सबसे पहले खिचड़ी चढ़ाने का अधिकार नेपाल के राजा (या उनके प्रतिनिधि) को दिया जाता रहा है। यह परंपरा सदियों पुरानी मानी जाती है।

गुरु गोरखनाथ और नेपाल का संबंध

गुरु गोरखनाथ को नेपाल में भी उतना ही पूजनीय माना जाता है जितना गोरखपुर में। नेपाल के राजवंश स्वयं को नाथ परंपरा का अनुयायी मानते रहे हैं।

नेपाल में 2008 में राजशाही समाप्त हो गई, लेकिन परंपरा समाप्त नहीं हुई। आज भी नेपाल की ओर से गोरखनाथ मठ के प्रतिनिधि या सरकारी प्रतिनिधि प्रतीकात्मक रूप से सबसे पहले खिचड़ी चढ़ाते हैं। यह परंपरा आज भी गोरखनाथ मंदिर में पूरी श्रद्धा से निभाई जाती है।

इस पर्व और इसकी धार्मिक मान्यताओं से सम्बन्धित और भी रोचक और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक किस्से जुड़े हुए हैं जिन्हें जानने के लिए आपको खुद इस पर्व में सम्मिलित होना पड़ेगा। तो, आप एक बार ज़रूर आएँ गोरखनाथ की तपोभूमि पर और आनंद लें एक अनोखे भारत का, जो सभी भारतीयों के मन मे बसता है।

बाबा गोरखनाथ की जय हो... मेरा गोरखपुर मेरा भारत!

सम्पर्क सूत्रः सत्यम कुशवाहा, द्वितीय वर्ष, एन.एस.डी छात्र
E-mail: satyamkushwaha8737@gmail.com

कुछ कलम से, कुछ कैमरे से

बनारस के घाटः सुश्री नंदिता
एन.एस.डी.

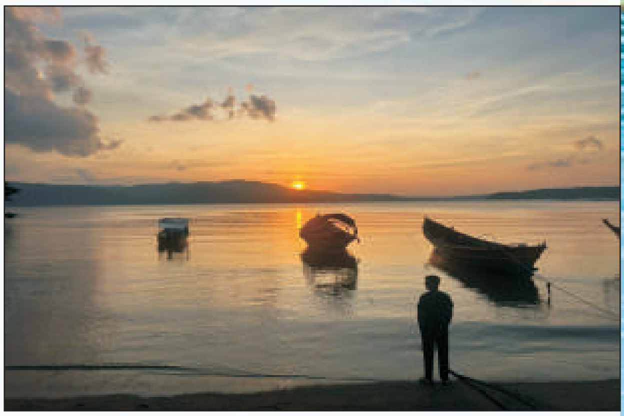

चिड़िया टापू, पोर्ट ब्लेयरः श्री धर्मवीर
एन.एस.डी.

अल्मोड़ा के रास्तों का प्राकृतिक दृश्यः
श्री दीपक जोशी, एन.एस.डी.

मानव गांवः उत्तराखंडः श्री अमित कुमार
एन.एस.डी.

अजिमाला शिव मंदिर, केरल
सुश्री कविता मिश्रा, एन.एस.डी.

सूर्यास्त, इंडिया गेट, दिल्ली
सुश्री इंदु बिष्ट, एन.एस.डी.

कुछ कलम से, कुछ कैमरे से

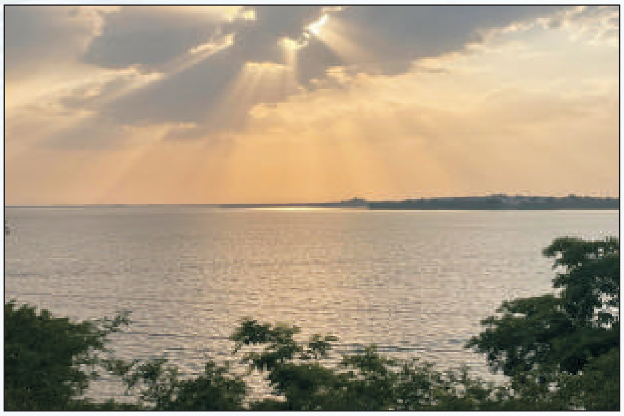

भोपाल की झील का एक दृश्यः जुबेर बेदी
एन.एस.डी.

कोलकाता का एक दृश्य
श्री दीपांकर पॉल, एन.एस.डी.

उत्तराखण्ड का सौंदर्य : श्री पीयूष श्रीवास्तव
एन.एस.डी.

जोरहाट, असम के एक गाँव का दृश्य
श्री सत्यम कुशवाहा, एन.एस.डी. छात्र

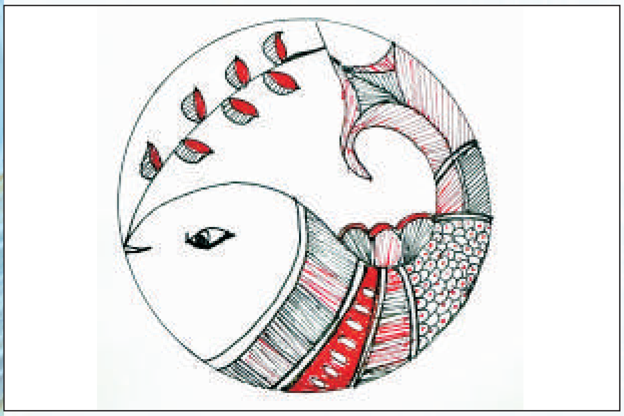

आरेख : सुश्री चेतना वशिष्ठ
एन.एस.डी.

आरेखः अभ्राद्यूति दास
(एन.एस.डी. छात्र)

कुछ कलम से, कुछ कैमरे से

हावड़ा ब्रिजः श्री कपिल देव, एन.एस.डी.

राष्ट्रपति भवनः श्री कमल नैन चोपड़ा, एन.एस.डी.

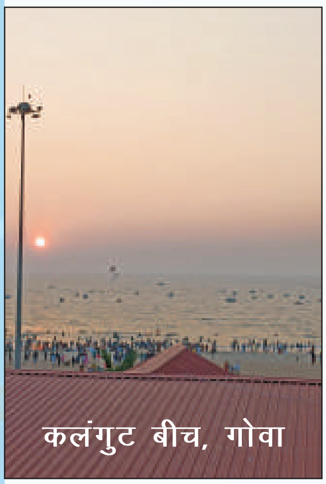

कलंगुट बीच, गोवा

श्री रविंदर कुमार
एन.एस.डी.

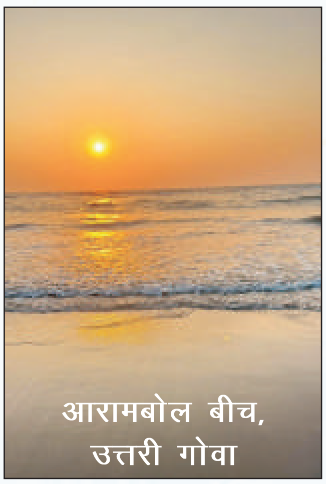

आरामबोल बीच,
उत्तरी गोवा

श्री हरविंदर
एन.एस.डी.

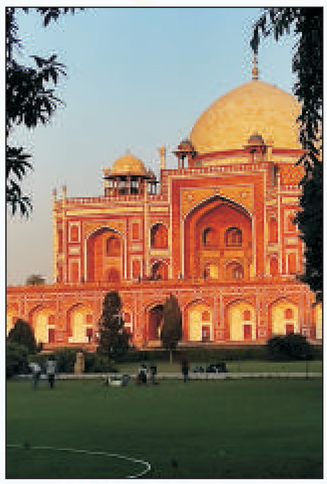

सुश्री रोनिका
एन.एस.डी. छात्र

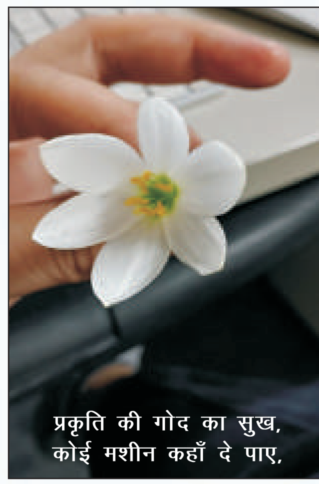

प्रकृति की गोद का सुख,
कोई मशीन कहाँ दे पाए,

श्री उत्कर्ष शुक्ला
एन.एस.डी.

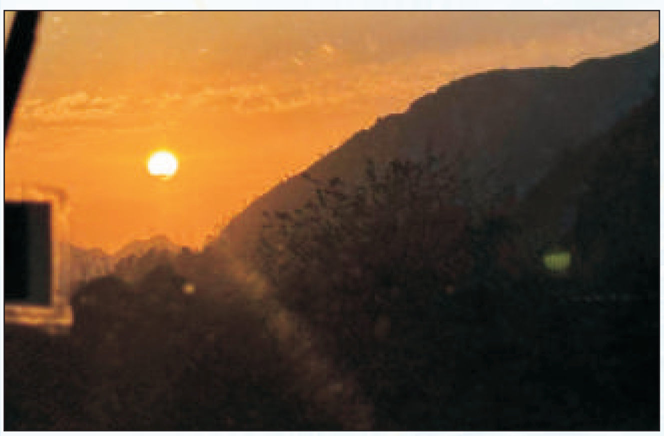

सूर्योदय–चौखम्बा का एक दृश्यः सुश्री नेहा भट्ट
एन.एस.डी.

दक्षिण भारत की वीर योद्धा परंपराः प्राचीन युद्धकला 'सिलंबम' को जीवंत बनाए रखने का प्रयास

श्री राजकुमार
एन.एस.डी.

राजभाषा गतिविधियाँ

हिंदी उत्सव आयोजन

राजभाषा विभाग द्वारा राजभाषा हिन्दी के कार्यांवयन एवं इसके प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से एन.एस.डी. में 1–30 सितंबर 2025 तक हिंदी उत्सव का आयोजन किया गया। इस आयोजन के दौरान विभिन्न प्रतियोगिताएं जैस–राजभाषा प्रश्नोत्तरी एवं सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता, पहेली प्रतियोगिता, नोटिंग व ड्राफ्टिंग प्रतियोगिता, सुलेख एवं श्रुतलेख प्रतियोगिता एवं लघु नाटिका प्रतियोगिता आदि का आयोजन किया गया। इन प्रतियोगिताओं में सभी प्रतिभागियों ने बढ–चढ़कर भाग लिया। प्रतियोगिताओं के विजयी प्रतिभागियों को प्रोत्साहन समारोह के अवसर पर पुरुस्कार वितरित किए गए।

राजभाषा गतिविधियाँ

जैसा कि आज के समय में कृत्रिम मेधा यानि Artificial intelligence का ज्ञान होना आवश्यक है। इसी बात को मद्देनजर रखते हुए एन.एस.डी. के राजभाषा विभाग द्वारा 20 नवम्बर 2025 को एन.एस.डी. में "भाषा एवं कृत्रिम मेधा की साथर्कता" विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस आयोजन के लिए सुश्री राजरानी भल्ला जोकि विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के साथ–साथ एक प्रतिष्ठित लेखिका एवं कवियत्री भी हैं, को कार्यशाला विशेषज्ञ के रूप में आमंत्रित किया गया। सुश्री भल्ला ने कृत्रिम मेधा एवं इसका प्रयोग विषय पर प्रतिभागियों को विस्तृत रूप से जानकारी दी।

लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल की 150वीं जयंती स्मृति वर्ष के अवसर पर National School of Drama (एनएसडी) की एक विशेष नाट्य प्रस्तुति

भारत सरकार के गृह मंत्रालय एवं संस्कृति मंत्रालय द्वारा लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल की 150वीं जयंती स्मृति वर्ष के अवसर पर National School of Drama (एनएसडी) को एक विशेष नाट्य प्रस्तुति की जिम्मेदारी सौंपी गई। इसी क्रम में "राष्ट्रीय एकता दिवस" के अवसर पर गुजरात के केवड़िया स्थित विश्वप्रसिद्ध Statue of Unity परिसर में, नर्मदा घाट के समीप स्थित मंत्रमुग्ध कर देने वाले खुले वातावरण में एक भव्य नाट्य एवं सांस्कृतिक प्रस्तुति आयोजित की गई। यह ऐतिहासिक आयोजन माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी की गरिमामयी उपस्थिति में आयोजित राष्ट्रीय एकता दिवस समारोह का विशेष आकर्षण बना।

इस अवसर पर एनएसडी रंगमंडल कलाकारों द्वारा "लौह पुरुष" नाटक का प्रभावशाली मंचन प्रस्तुत किया गया। लगभग 83 मिनट की अवधि वाले इस विराट नाट्य आयोजन में देशभर से आए लगभग 200 कलाकारों ने भाग लिया। प्रकृति की मनोरम छटा, नर्मदा तट की भव्यता और Statue of Unity की विराट उपस्थिति के मध्य प्रस्तुत यह नाटक भारतीय रंगमंच के इतिहास का एक गौरवपूर्ण क्षण बन गया।

नाटक "लौह पुरुष" सरदार वल्लभ भाई पटेल के जीवन, उनके अद्वितीय नेतृत्व, राष्ट्र–एकीकरण में उनके अमूल्य योगदान तथा भारत की अखंडता के लिए किए गए संघर्ष पर आधारित था। प्रस्तुति में विशेष रूप से देसी रियासतों के एकीकरण में उनकी निर्णायक भूमिका, स्वतंत्रता आंदोलन में उनका नेतृत्व, राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता का संदेश तथा "विविधता में एकता" की भारतीय भावना को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया।

इस भव्य प्रस्तुति का निर्देशन, संगीत निर्देशन एवं संपूर्ण परिकल्पना चितरंजन त्रिपाठी, निदेशक, National School of Drama द्वारा की गई। लेखन वरिष्ठ रंगकर्मी आसिफ अली हैदर द्वारा किया गया। नाटक, संगीत, संवाद, प्रकाश, दृश्य–संयोजन और विशाल कलाकार समूह के समन्वय ने इस प्रस्तुति को अद्वितीय ऊँचाई प्रदान की।

यह प्रस्तुति केवल एक नाटक नहीं थी, बल्कि भारतीय राष्ट्रनिर्माण की चेतना को रंगमंच के माध्यम से जीवंत करने का एक सशक्त प्रयास थी। दर्शकों ने इसे अत्यंत सराहा और पूरा वातावरण देशभक्ति एवं राष्ट्रीय गौरव की भावना से ओतप्रोत हो उठा। अगले दिन माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने संबोधन में इस नाटक का विशेष उल्लेख करते हुए अपने वकतव्य में इसे "अद्भुत प्रस्तुति" कहा। उन्होंने पूरे 83 मिनट तक इस प्रस्तुति को अत्यंत रुचि और एकाग्रता के साथ देखा, जो अपने आप में कलाकारों और National School of Drama के लिए अत्यंत गौरव और सम्मान का विषय रहा।

भारतीय रंगमंच के इतिहास में यह एक ऐतिहासिक उपलब्धि मानी जा सकती है कि पहली बार National School of Drama को माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के समक्ष इतनी विराट और महत्वपूर्ण नाट्य प्रस्तुति देने का अवसर प्राप्त हुआ। यह आयोजन न केवल एनएसडी के लिए, बल्कि समूचे भारतीय रंगमंच जगत के लिए गर्व, सम्मान और सांस्कृतिक गौरव का अविस्मरणीय क्षण सिद्ध हुआ।